THE BOOK WAS DRENCHED

सजनी सिरीज़—[छः] [उपन्यास]

जयश्री

लेखक—

श्री नरसिंहराम शुक्ल

प्रकाशक—

मनोरंजन पुस्तकमाला

इलाहाबाद ।

पहली बेर] [मूल्य एक रुपया

जयश्री

'जयश्री' उपन्यास मूलतः तीन सौ पृष्ठों में लिखा गया था, पर इस कागज के अभाव के युग में पूरा उपन्यास छापना संभव न हुआ। इसलिए उसका यह संक्षिप्त रूप ही पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जा रहा है। इसका नायक संग्राम है जिसका जीवन, प्यार, बलिदान, उत्साह और देश प्रेम से भरा है, प्रधान नायिका जयश्री, सौन्दर्य, वीरता और उत्सर्ग भरे प्रेम की देवी है—नायक, रेवानन्द घृणा का औतार है और उपन्यास के आधार भूत ठाकुर दिग्विजयसिंह सच्चे माने में देश भक्त और वीर है—आशा है इस उपन्यास का जनता में यथेष्ट आदर होगा—समय आने पर हम पूर्ण उपन्यास भी छापेंगे। संक्षिप्त करने में यदि उपन्यास में दोष आगया हो तो, आशा है पाठक उसके लिये क्षमा करेंगे!

प्रकाशक

एक

"तुम कहते हो दादा मैं अपना अतीत भूल जाऊँ! मैं यह न सोचूँ कि कभी मैं भी इस क़ाबिल था कि दुनियाँ मेरा पैर धोने में अपना आत्म-सम्मान समझती थी?" युवक ने कहा।

वृद्ध बोला—"कल की कल्पना में डूबे रहने से कोई लाभ नहीं संग्राम! कल तुम हिमालय-पर्वत के समान ऊँचे थे, भारतीय महासागर के समान प्रशस्त थे, पर आज क्या हो, इसे विचारो और आने वाले की कल की सुध लो; बिगड़े भूत और जर्जर वर्तमान पर दृढ़ भविष्य की नींव डालो। आज के युग में हरएक का धर्म होना चाहिये कि वह आने वाले कल की बात सोचे और उसका सामना या स्वागत करने के लिये आज ही तैयार हो जाय।"

जो लोग बिना किसी मेहनत के कल के बारे में कुछ अन्दाज़ लगाना चाहते हैं, वे यह कह कर अपना मन भर लेते हैं कि जो होनहार होगा, वही होगा। होनहार क्या है, बदा क्या है, इसको जानने के लिये दुनियाँ के हर हिस्से में अपने अपने ढंग और तरीक़े हैं। यहाँ भी तरीक़े हैं, पर उन तरीक़ों में कोई एक भी बात नहीं है। जो लोग कल की बात आज ही बता देते हैं उनकी बातों का कुछ लोग मज़ाक़ उड़ाते हैं। पर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो उन पर ग़ौर करते हैं और उन्हें सच मानने लगते हैं।

कुछ लोग आने वाले कल की बात बताने का रोज़गार भी करते है। इन रोज़गारियों में ज्योतिषी या नजूमी लोग हैं। कुछ लेखक भी ऐसे हैं जो आने वाले कल के २०० वर्ष आगे तक की दुनिया की तसवीर खीच चुके हैं। इन दोनों दर्जों के लोगों की सारी की सारी बात तो कभी सच नहीं होती, पर कुछ सच हो ही जाती है।

बीते हुए कल की तो बात हम आसानी से जानते है और जान सकते हैं। यह जानकारी किताबों से और अपने बुजुर्गों से होती है। आज की बातों की जानकारी देख सुन कर हासिल की जाती है। पर आने वाले कल की बातें कैसे जानें? इसे जानना पहले हो चुकी बातों की जानकारी की तरह सरल नहीं। यदि आने वाले कल की बातें हमें मालूम हो जायँ तो हम दुनियाँ पर, अपने कुटुम्ब पर, अपने पर आने वाली मुसीबतों से छुटकारा पा सकते है।

लेकिन सवाल यह उठता है कि यह जानते हुए भी कि अगर कल की बातें हमें मालूम हो जायँ तो हम आने वाली मुसीबतों से बचाव का रास्ता निकाल सकते हैं, कितने लोग आने वाले कल की बातें जानने के लिये कोशिश करते हैं।

ज्यादातर तो लोग झूठी डींग हाँकते हुए यह कहते फिरते है—जो आयेगा, देखा जायगा; क्या रक्खा है, बेकार माथापच्चो करने में? आने वाले कल की बात तो जाने दीजिये, ऐसे लोग बीते हुए कल की भी बातें नहीं जानना चाहते। ऐसे ही लोग दुनियाँ में बहुत कुछ गड़बड़ी फैलाने का कारण होते है। जो लोग, 'जब आयेगा तब देखा जायेगा' कहते फिरते हैं, वे ही 'आ जाने पर' आँखें मूँद कर डरपोकों की तरह छिप जाते हैं।

तुम्हारे घर यदि कोई समझदार बुजुर्ग होगा तो वह तुमसे

कभी न कभी जरूर कहता होगा, 'बेटा आगे की बात सोचो।' एक कहावत भी है, 'अग्रसोचो सदा सुखी'—यानी आगे की सोचने वाला सदा सुखी रहता है।

आदमी के दिमाग़ को पढ़ने वाले विद्वानों ने दिमाग को तीन हिस्सों में बाँट रखा है। पहले हिस्सों में वे उस दिमाग़ को रखते हैं जो हर घड़ी काम करता रहता है। दूसरे में वे दिमाग़ रखे गये है जो कुन्द होते हैं। तीसरे हिस्से में वे दिमाग़ आते है जो बड़ी-बड़ी गुत्थियाँ सुलझाने में हर घड़ी लगे रहते हैं। ऐसे दिमाग़ पुरानी बातों की खराबियाँ सोचते है, और यह सोचते है कि वह खराबी कैसे दूर की जाय। मसलन, रेलवे इंजिन को ले लीजिये। उसका धुआँ जब हवा में निकलता है, तब किन-कियाँ उड़-उड़ कर पीछे की ओर जाती है और लोगों की आँखों में पड़ती है। इंजिन के धुएँ की गति दूसरी ओर घुमा देने के लिए क्या उपाय होने चाहिए, इसी तरह की बात सोचने वालों ने ही, मशीनों में एक से एक अच्छे नये-नये सुधार किये है।

कुछ बीती हुई बातों का कारण खोजने में लग जाते हैं। जैसे, फलाँ जमाने में, एक ही मुल्क में रहने वाले आपस में क्यों लड़ा करते थे? जब उन्हें कोई खास वजह मालूम हो जाती है तब दुनियाँ के सामने उसे जाहिर करते हैं। उस समय दुनियाँ के लोगों का यह फर्ज होता है कि मौजूदा आज में उन बातों को न दुहरावें।

कुछ लोग उनसे भी आगे होते हैं। वे बीते कल की आधार पर नहीं, बल्कि यों ही ऐसी-ऐसी बातें सोच निकालते हैं जिनसे आने वाली नये ढंग की मुसीबतों से लोगों का किस तरह बचाव हो सके।

अब जरा मोटी-मोटी बातों पर आ जाओ। पुरानी किताबों

से मदद लो। इतिहास में लिखा है कि हुमायूँ के बाद उसका लड़का अकबर, और अकबर के बाद उसका लड़का जहाँगीर गद्दी पर बैठा, इसलिए जहाँगीर के ज़माने के लोग इतना तो सोच ही सकते हैं कि अब जहाँगीर के बाद उसका लड़का गद्दी पर बैठेगा। इस तरह आने वाले कल की बात जानने का एक साधन बीते कल की परम्परा या रिवाज़ भी है जिसका दुहराया जाना बिलकुल तय है।

तुम थोड़ा भी ग़ौर करोगे तो यह मालूम हो जायगा कि आने वाले कल की बातों की नींव आज ही पड़ती है और आज की नींव बीतने वाले कल पर होती है। मसलन, आज यह क़ानून है कि अगर कोई आदमी चोरी करे या डाका डाले तो उसे इतने दिन की सज़ा होगी। आज के इस कानून की नींव सच पूछो तो कल ही पड़ी थी। आज इस दुनियाँ में लाखों आदमी हैं जिन्होंने यह तय कर लिया है कि दाने-दाने को मर जायेंगे, पर चोरी नहीं करेंगे। क्यों? इसलिये कि कल उन्होंने उन आदमियों को जेल के अन्दर चक्की पीसते देखा है जो चोरी या डाकेज़नी का अपराध कर चुके है। वे सोचते हैं कि हमने भी वही क़सूर किया तो हमें भी वही सज़ा भुगतनी पड़ेगी।

आज ऐसे लोगों की तादाद बहुत अधिक हो गयी है जो मज़हबी उसूलों अर्थात् धार्मिक नियमों को ज्यों का त्यों मानने को तैयार नहीं हैं। वे हर बात को अपनी 'क्यों' की तराज़ू पर तौलना चाहते हैं, इसलिए कि वे बातें कल की थीं; आज की नहीं। हमें तो आज की बात देखनी होगी।

भला सोचो तो सही। तुमने कल ही देखा है कि एक टूटे-फूटे मकान में रहने वाले लोग उस मकान के एकाएक गिर

पड़ने से किस तरह दब कर मर गये। अब तुम्हें भी अपने घर की जाँच-पड़ताल कर डालनी चाहिये, उसे ठोक पीट लेना चाहिये। मान लो तुम्हारा भी मकान टूटा-फूटा है, फिर तुम क्या सोच कर उस मकान में रह रहे हो! यही न, कि वह नहीं गिरेगा।

अगर तुम ऐसे मकान में रहते हो, जिसके आसपास सड़न है, गलीज़ है तो उसमें रहने से बीमारी होगी ही। उस टूटी फूटी ख़राब जगह में बने मकान का आगे आने वाला कल सोचो, पिछला कल नहीं कि जब कि वह मज़बूत था। आज तो वह मज़बूत नहीं है आज तो वह बीमारियों का घर हो गया है। उठो छोड़ दो उस घर को।

इस तरह ज़िन्दगी के हर दायरे में, उस टूटे-फूटे मकान की तरह बहुत सी बातें हैं, जिनसे तुमको, यदि तुम थोड़ा भी सोचोगे, तो पिण्ड छुड़ाने के लिए तैयार हो जाना पड़ेग।

उठो, अब बीते कल के बारे में लम्बी चौड़ी बातें करना छोड़ दो। आज तुम जो कुछ हो, उस पर गौर करो और आने वाले कल को देखो। कल तुम्हारे खान्दान में हनुमान थे, भीम थे, बाबर थे, शेरखाँ थे, पर आज तुम क्या हो 'तिनकौड़ी और छदामीलाल।' कल तुम्हारे बाप शेर मारते थे, पर आज तुम एक लोमड़ी भी नहीं मार पाते। फिर आनेवाले कल को तुम्हारे लिए एक चूहा मारना भी दुश्वार हो जायगा। इसलिए अपनी बीती नाकामयाबियों को सोचना होगा; उनका असली कारण जानना होगा फिर उसे दूर करने का उपाय करना होगा। यह तब होगा जब मुल्कों की राजनीतिक चालों को पढ़ोगे। आज दुनियाँ में कहाँ क्या हो रहा है उसकी ओर कान लगा रखोगे, आँखें

खोले रहोगे। अब तुम्हें मरे हुये लोगों की याद में खुशियाँ मनाना है। कुछ गम उनके में घुलना नहीं है।

तुम अपनी कल की गरीबी, बेबसी, आफत जुर्म और मुसीबतों को सोचकर पस्त हिम्मत मत बनो वरन सोचो तुम वैसे क्यों कर हुये। और तब आने वाले कल की एक सुनहली तस्वीर तुम्हारी आँखों के सामने नाच उठेगी। वह तस्वीर तुम्हें अंधेरे में रास्ता बतायेगी, तुम्हारे ठण्डे खून में गरमी पैदा करेगी, तुम्हारे बाहों में बल भरेगी और तुम्हें बता देगी कि कब क्या करना चाहिये। आज इस देश का कल, यानी आने वाला कल घोर अंधकार में पड़ा है। काश, तुम जैसे युवक इस विषय में सतर्क हो जाते।"

संग्राम ने देखा, बात पूरी करते-करते वृद्ध की आकृति गम्भीर हो उठी है। उसके चेहरे की झुर्रियाँ तन उठी हैं। फिर भी वृद्ध कहता रहा 'इस देश के लाखों लोग परिस्थिति का बहाना कर अपनी जान चुरा रहे हैं। जभी उनसे कुछ करने को कहो तभी वे कह बैठते हैं' क्या करें परिस्थिति अनुकूल नही है, हम आज शक्ति हीन हैं, यह पशु बल-प्रधान युग है आदि आदि सुनने में तो ये बहाने बड़े उचित जान पड़ते हैं, पर असलियत यह नहीं है। मैं पूछता हूँ कि इस तरह की बहाने बाजियों का आप लोग कब तक आड़ लेते रहेंगे। भगवान राम, सीता के हरी जाने के बाद जब रावण के मुकाबिले के लिये आगे बढ़े तब क्या परिस्थिति उनके अनुकूल थी ? पाण्डवों ने कौरवों के विरुद्ध जब युद्ध घोषणा की तब क्या परिस्थिति अनुकूल थी ? संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अड़तालिस जिलों में तेरह जिलों ने जब स्वतन्त्रता की घोषणा की तब क्या परिश्थिति उसके अनुकूल थी ! सिखों के विरुद्ध जब मुसलिम साम्राज्य शाही बे तरह

कुपित थी तब यदि सिख सम्प्रदाय के लोग आगे बढ़ने में कभी न हिचके तब आज हम परिस्थितियों के विपरीत होने का बहाना जो कर रहे हैं उसका समर्थन कौन करेगा ! सच बात तो यह है कि जिन्हें कुछ करना है, जो कुछ करना चाहते हैं, वे परिस्थितियों का बहाना नहीं बनाते। वे हथेली पर प्राण रख कर आगे बढ़ते रहते हैं।"

संग्राम और वृद्ध की बातें नगरकोट की धर्मशाला के फाटक पर हो रहीं थीं। उस वक्त वहाँ उन दो को छोड़ कर और कोई न था। यह धर्मशाला शहर से कुछ दूर हट कर शहर के बाहर बनी थी। पुराने जमाने में, जब आज की तरह होटलों की भरमार न थी, तब इन धर्मशालाओं की बड़ी कदर थी। इनमें सैकड़ों यात्री ठहरते थे। धर्मशाला के लम्बे-चौड़े आँगन में सैकड़ों चूल्हें और अदाहे जलते थे। ऐसा लगता था जैसे कोई भारी सी फौज ने पड़ाव डाल दिया है और हर सैनिक को अपने-अपने खाने का प्रबन्ध करना है। यों इस धर्मशाले का महत्व आज इस युग में भी जब कि यहाँ से कुछ ही मील की दूरी पर शहर में एक से एक, सुन्दर व्यवस्थित होटल जगमग-जगमग कर रहे हैं, कुछ कम नहीं है। अनेक ऐसे यात्री जिन्हें शहर की गन्दी नालियों, और सवारियों की घड़घड़ाहट से परहेज है, यहीं ठहरते हैं। शहर की सारी धर्मशालाओं से, यह अधिक साफ सुथरी रहती है। पहले इस धर्मशाला के पास एक बहुत पुरानी बस्ती थी, उसे नगर कोट कहते थे। यह धर्मशाला भी उसी नाम पर 'नगरकोट की धर्मशाला' कही जाती है। इस धर्मशाला की इमारत को एक पूरा गाँव समझिये। आँगन में हर कोने पर चार कुँए हैं और बीच आँगन में एक बहुत बड़ी आम की बगिया है। आम के बड़े-बड़े पेड़ों को घेर कर दोपलिया, बरामदादार

मकान है जो लगभग एक मील के घेरे में बना है। कहते हैं किसी जमाने में इस धर्मशाले में तीस हजार तक सिपाही टिका करते थे। अब तो अधिक से अधिक सौ सवा सौ यात्री रहते हैं। मुख्य द्वार इतना ऊँचा है कि भीतर की सारी बाग दीख पड़ती है। शहर के पास, और तनिक बाहर होने के नाते, रोज शाम को शहर के सैलानी लोग यहाँ आ जाते हैं। इस धर्मशाले की एक बहुत बढ़ी विशेषता, कात्यायिनी देवी का मन्दिर है, जहाँ हर शनीवार को शहर के हजारों आदमी दर्शन करने आते हैं। आप अभी अभी जिस वृद्ध की बातें सुन चुके है, वह इसी कात्यायिनी के मन्दिर का पुजारी है। और अब वही धर्मशाले का मुन्शी भी है। ठहरने वाले उसी की इजाजत से यहाँ ठहरने पाते हैं।

मन्दिर के द्वार पर काले पत्थर पर ब्राह्मीलीपि से मिलती-जुलती किसी लीपि में एक शिलालेख है। विशेषज्ञों का कहना है कि यह पाण्डव युग की लीपि है। किम्बदन्ती यहाँ तक है कि एक बार पाण्डव बन्धुओं ने अज्ञात-काल में यहाँ आकर शरण ली थी।

थके माँदे यात्रियों के लिए नगरकोट की धर्मशाला-भवन का ऊँचा कंगूरा ऐसा लगता है मानो वह धैर्य और सन्तोष का प्रहरी हो। नगरकोट के कुँओं का जल, देवी कात्यायिनी का दर्शन, पुजारी की विद्वत्ता एवम अतिथि-प्रेम सब मिल कर यात्रियों को ऐसा मोह लेते हैं कि एक बार जो यहाँ एक रात भी बस गया वह अनेक बहाने कर यहाँ महीने का महीना रहा आता है। नगरकोटे के धर्मशाले की सन्ध्या बेला मशहूर है। अस्त होते सूर्य की लम्बी किरणें जब अपनी सुनहली धूप में धर्मशाला के बिशाल भवन को नहलाने लगती हैं तब लगता है, प्रकृति और

बनावट दोनों ने अपनी दोस्ती के सहारे एक तीसरी चीज़ पैदा कर दी है। मौसमी फसलों की लहलहाती हरियाली के बीच नगरकोट की धर्मशाला, विविध आभूषणों से सजी धजी, बड़ी मनोहर लगती है। प्रवेश द्वार पर एक बड़ा सा वट-वृक्ष है। यह वृक्ष पूरी धर्मशाला का केन्द्रिय स्थान है। हर यात्री पहले यहाँ हो लेता है तब वह भीतर जाने पाता है। वट-वृक्ष के नीचे एक बहुत बड़ा चबूतरा है। उसी चबूतरे पर युवक संग्राम और वह पुजारी बैठे बात कर रहे हैं।

संग्राम अन्त में बोला ' तुम ठीक कहते हो दादा, मैं तुम्हारी बातों पर अमल करूँगा। पर आज तुमसे उस हवेली में होने वाले प्रकाश का भेद भी जान लेना चाहता हूँ, तुम बहुत दिनों से यह बात टाल रहे हो, पर आज तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा।"

पुजारी कुछ सोच विचार के बाद बोला "कल बता दूँगा।

और दूसरे दिन सुबह पुजारी चबूतरे पर बैठा था। हवेली में प्रकाश की कहानी सुनने को जितने भी यात्री लालायित थे, सभी उसे घेर कर बैठे थे। वह बोला, कभी उस हवेली के दिन बड़े अच्छे थे। दिगविजयसिंह की सारे देहात में तूती बोलती थी। राजधानी के निकट होने के नाते वे बड़े सम्मानित समझे जाते थे। यह उसी ठाकुर की हवेली है। ठाकुर ने बुढ़ौती में ब्याह क्या किया, अपने लिए एक नया संकट मोल ले लिया। नई ठकुराइन बड़ी कर्कशा थी। ठाकुर से एक दिन भी न पटी। जब से ठकुराइन एक बालक की माँ हुई, वह ठाकुर का और भी विरोध करने लगी। उधर बेचारा ठाकुर उसे खूब मानता था। जब से ठकुराइन ने, ठाकुर के लिए एक उत्तराधिकारी दे दिया तब से, ठाकुर उसे प्राणों से भी अधिक चाहने लगा। ठाकुर था भी बड़े उदार हृदय का व्यक्ति!

"तो क्या अब ठाकर नहीं रहे !" संग्राम ने पूछा।

"कहा तो यही जाता है कि अब वह नहीं रहा, पर मेरी आत्मा इस बात को मानने को तैयार नहीं होती।"

तभी एक यात्री चौंक उठा। अबकी उसी ने प्रश्न किया ! "पर हवेली क्यों उजड़ गई। और उसमें रहस्यमय रूप से प्रकाश कैसे होता है।"

"यही तो एक पहेली है जिसे आज तक मैं नहीं सुलझा पाया हूँ।"

संग्राम ने अजनबी को रोक कर कहा—कहने दो भाई। बीच में मत टोको।

"एक दिन ! उस दिन के बीते कम से कम पन्द्रह वर्ष तो आज अवश्य हो गये होंगे। ठाकुर दिग्विजयसिंह ने मुझे बुलवा भेजा !"

"आप उनके प्रियजनों में रहे होंगे !" प्रश्न युवक ने किया।

"पर प्रियजनों में रह कर ही क्या किया ! कुछ भी तो उनकी सहायता न कर सका। हाँ तो जो व्यक्ति मुझे बुलाने आया था, मेरे लिए बिलकुल अपरिचित था। मैंने उसे कभी नहीं देखा था।

तभी वह अजनबी, चुपचाप वहाँ से उठा और धीरे से एक ओर खिसक गया। उसके जाने पर किसी ने विशेष ध्यान भी नहीं दिया।

"जब मैं हवेली में पहुँचा, हवेली में घोर सन्नाटा था। कहीं भी रोशनी न थी। एक भयंकर सुनसान चारों ओर दीख पड़ा। मुझे बुला ले जाने वाला व्यक्ति, भीतर चला गया। मैं घबड़ाया सा इधर उधर देखने लगा। कुछ समझ न सका आया क्या

बात है। कुछ देर बाद ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई काली सी छाया मेरे सामने से हट रही हो।"

"आप डर गये होंगे।" संग्राम बोला।

"बिलकुल नहीं। हाँ चिन्ताग्रस्त जरूर हो उठा। दूसरे क्षण एकाएक कोई वस्तु मेरे सामने भद्द से गिरी। मैं घबड़ा कर उठ पड़ा। देखा, वह कटा हुआ शरीर था। रक्त का फुहारा छूट रहा था!" तब मैं चुपचाप वहाँ से भगा। सीधे नगरकोट आकर साँस ली। उस समय जयश्री एक वर्ष की भी न थी। उसकी माँ प्रसव की पीड़ाओं को अच्छी तरह भूल भी न पाई थी कि, सहसा एक दिन मैं राज्य द्वारा पकड़ लिया गया। मुझ पर ठाकुर की हत्या का आरोप लगाया गया। उस हत्यारिणी ठकुराइन ने भरी अदालत में कहा कि मेरा उससे अनुचित सम्बन्ध था, और मैंने ही ठाकुर को अपने मार्ग का बाधक समझ कर हत्या की।

मैंने बड़ी-बड़ी सफाइयाँ दीं। पर हत्याकाण्ड के समय मेरा वहाँ उपस्थित रहना, अधिकारियों के सामने प्रमाणित हो गया। हाँ अलबत्ते, उन्हें इस बात का कोई आँख देखा साक्षी न मिला कि हत्या मेरे ही हाथों हुई है! अधिकारियों ने मुझे चौदह वर्ष का कठोर कारावास दे दिया। मेरी स्त्री, मेरे वियोग में घुलघुल कर मर गई! जयश्री को एक साधु ने पाल पोस कर बड़ा किया। आज तीन साल हुए मैं कारावास से मुक्त हुआ हूँ। मेरे आने के एक दिन पूर्व जयश्री का पालक पिता चला गया। वह हवेली भी उजड़ गई। उसका न वह वैभव रहा और न वह सम्पन्नता। ठाकुर को तो दुनिया मरा हुआ समझती ही है। ठकुराइन का भी आज तक पता नहीं लगा। काश मुझे ठाकुर का लड़का मिल जाता तो उसे लड़-भिड़ कर उसका इलाका दिलवाने का प्रयत्न करता!"

"कितने वर्ष का हुआ होगा वह लड़का" संग्राम ने पूछा !

"अधिक से अधिक अठारह बीस वर्ष का !"

"अठारह बीस वर्ष का !' संग्राम ने चीख कर कहा !"

"हाँ यही एक वर्ष कम या एक वर्ष अधिक !"

"तुम्हारा क्या ख्याल है, पुजारी, उस लड़के की माँ जीवित होगी।"

"जरूर होगी ! अभी उसकी अवस्था चालीस पैंतालिस से अधिक की न होगी।"

"तुमने उसे देखा था !"

"कभी नहीं !"

"वह इस समय कहाँ हो सकती हैं ! कुछ अनुमान कर सकते हो !"

मेरा अनुमान है, उसे कहीं छिपा कर रखा गया हैं।

"कारावास से वापस आने पर तुमने उनकी कुछ छान बीन की या नहीं।' संग्राम ने पूछा।

"कुछ तो की। पर अब उससे मेरी कोई खास दिलचस्पी रही नहीं।"

"खैर, पर हवेली में प्रकाश वाली घटना तो अधूरी ही रही।"

"अरे हाँ ! उसके बारे में इस प्रान्तर में यह प्रसिद्ध है कि ठाकुर की आत्मा प्रेत होगई है, वही हवेली में रोज सायंकाल रोशनी जला कर दुनिया को यह बताती रहती है कि, ठाकुर अब भी हवेली पर काबिज है।'

"ओह ! कहता हुआ, संग्राम न जाने क्या क्या सोचने लगा !

'क्या सोच रहे हो बेटा।'

संग्राम बोल उठा हवेली की घटनायें !

संग्राम ने पुजारी की वक्तृता के अन्त में एक लम्बी सी साँस ली, और उठ पड़ा। पुजारी भी उठ पड़ा।

संग्राम की आँखों में नींद नहीं थी। हवेली की घटना रह रह कर उसे याद आ रही थी। वह यह जानना चाहता था कि आखिर ठाकुर को क्या हुआ और विधवा ठकुरानी कहाँ गई ! तभी उसे एकाएक अपनी माँ याद पड़ी। अपनी माँ का एकाकी जीवन। बिल्कुल संदिग्ध अवस्था में; राजधानी के एक नागरिक के यहाँ दासी सा जीवन बिताना। रात्रि के अंधकार में एक संदेहपूर्ण व्यक्ति का उसके पास, आना ! सोचते सोचते संग्राम का सिर भन्ना उठा। वह ज़ोर से अपने आप बोल पड़ा "हे भगवान !"

"अभी तुम सोये नहीं" किसी ने कोमल स्वर में पुकारा !

"कौन" मुड़ कर संग्राम ने पीछे देखा !

"मैं हूँ जयश्री !"

"जयश्री ! तुम इतनी निर्जन रात्रि में, अकेले, यहाँ बोलो कैसे आयी !"

जयश्री, मौन हो संग्राम की ओर देखकर वहाँ से चली गई।

जिस कमरे में वह सो रहा था, उससे बिल्कुल सटा एक दूसरा कमरा था। पुजारी खा पीकर सोने का उपक्रम कर रहा था। कमरे में दो चारपाइयाँ थीं। एक पर वह सोता था दूसरे पर जयश्री। जयश्री ने उस रात को पूछा, "दादा यह कौन है ? मैं प्राय: देखती हूँ; आप इसको बहुत मानते हैं और इसका आदर करते हैं, रहता-रहता है न जाने किधर से आ जाता है।

पुजारी बहुत दिनों से यह अनुभव कर रहा था कि यद्यपि जयश्री प्रकट रूप में संग्राम से कोई सम्पर्क नहीं रखता है, फिर

उसकी आँखें जब कभी उसे देख पाती हैं; उत्सुक हो उठती हैं, वे उसके बारे में जानने को बेचैन हैं। पर प्रकट रूप में जयश्री के मुँह से संग्राम का उल्लेख सुन पुजारी कुछ क्षण के लिए गम्भीर हो विचारने लगा।

पुजारी को चुप देख जयश्री बोली, मुझसे कोई अपराध हुआ दादा? यदि हुआ हो तो क्षमा करना।'

पुजारी ने जयश्री की ओर निहारा। वह पुजारी की ओर पीठ कर दीवाल की ओर देख रही थी। वह बोला। तुम रूठ गई बेटी। रूठो मत। यह संग्राम इस देश का एक नौनिहाल है। बड़ा मनस्वी। बड़ा परिश्रमी। काश उसी की भाँति देश के और भी युवक हो पाते। अभी उसकी जवानी, उसके भोलेपन के कैदखाने में बन्द है और उस कैदखाने की चाभी उसका चरित्र बल सँभाल रहा है। उसका सबसे बड़ा गुण है कि वह अन्य युवकों की भाँति अपने जीवन को सुख और विलासिता की शैय्या पर सुलाने के लिए लालायित नहीं रहता। वह भविष्य में किसी उच्च सरकारी पद पर बैठने का स्वप्न नहीं देखता वह जीवन में केवल लक्ष्मी का पुजारी नहीं बनना चाहता। उसे दुनिया की माया और मोह के बन्धन से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।"

जयश्री बोली—"आपको यह सब कैसे मालूम।"

"मुझे मालूम है बेटी। गत वर्ष शहर में विशूचिका फैली थी। बाढ़ ने अलग शहर वालों को हैरान कर रखा था, उस वक्त इस संग्राम ने आश्चर्य-जनक कार्य किया। जब अनेक परिवार रोग जर्जर और गृह हीन हो रहे थे, संग्राम दौड़-दौड़ कर लोगों को औषधियां बाँटता, उसकी सेवा करता, उनकी धन से सहायता करता था। संग्राम के सेवादल ने शहर के एक बहुत

बड़े अंश को मरने से बचाया। इसी से मैं उसके साथ पुत्र सा व्यवहार करता हूँ।"

लगा जैसे जयश्री सो गई। क्योंकि वृद्ध की बातों पर कोई हुंकारी नहीं भर रहा था तब वृद्ध भी चुप हो गया। सुबह संग्राम कुछ पहले उठ पड़ा था। कारण उसे अपने घोड़े की सँभाल करनी थी। वह दौड़ कर उस वृक्ष के पास पहुँचा जहाँ कल वह घोड़ा बाँध गया था। देखा तो घोड़ा वहाँ नहीं था। वह इधर-उधर निहारने लगा कि उसने देखा घोड़ा छाये में बँधा है और उसके आगे घास पड़ी है। उस वक्त धर्मशाला शान्त एवम नीरव थी। वह घोड़े के पास आया। वह आश्चर्य में था कि आया घोड़े को हटाया किसने। वह चुपचाप अपने कमरे में वापस आ गया। पुजारी नदी की ओर स्नान करने निकल गया था। वह घोड़े के विषय में जानने के लिए पुजारी के कमरे में आया तो देखा वह नहीं है। वह लौटना ही चाहता था कि जयश्री बोली—'दादा नहाने गये हैं, उन्हें लौटने में देर लगेगी? कोई काम हो तो बताइये।"

"कोई काम नहीं है" कहते हुए संग्राम ने जयश्री की ओर देखा। इसके पहले भी उसने जयश्री को देखा था, लेकिन आज उसे जयश्री ऐसी लगी जैसे वह कल वाली नन्हीं सी बालिका नहीं वरन, कोई वयस्क युवती है। सीधे-साधे वस्त्रों में, शृंगार-प्रसाधन-हीन उसके शरीर पर उसकी आयु इठला रही थी। वह कह उठा "कोई काम नहीं है!"

"बिना काम के आप यहाँ तक नहीं आये हैं। जरूर कोई काम है। आप बताने में संकोच कर रहे हैं।"

लगता है आपको मुखाकृति अध्ययन की कला का ज्ञान है!

मैं यह पूछने आया था कि कल रात मेरे घोड़े को किसने छाये में बाँधा और किसने उसके सामने चारा डाला।

"यदि मैं कहूँ कि मैंने ही किया तो विश्वास होंगे ?"

"तुमने ! यह क्या वह कहती तो जयश्री ! मेरा घोड़ा साधा नहीं है। भगवान ने खैर किया। अन्यथा वह कभी-कभी पिछाड़ी भी मारता है।"

जयश्री को संग्राम की बातें सुन किसी किस्म का भय हुआ या नहीं, यह जानने के लिए उसने उसके चेहरे की ओर देखा तो, उसने उसे मुस्कराते पाया। वह बोला "तुम मुस्करा रही हो जयश्री।"

'और क्या करूँ। आप अपने घोड़े को बदमाश बता कर मुझे भयभीत करना चाहते हैं ! आप ही जैसे पुरुषों ने आज इस देश की स्त्रियों को घर की चहार दीवारी में बन्द कर रखा है—"बात पूरी करते जयश्री का चेहरा लाल हो आया। वह कहती रही—आप समझते हैं स्त्रियाँ इतनी निबल होती हैं कि एक घोड़ा भी नहीं सँभाल सकतीं ! मैं कहती हूँ, आपका ख्याल बिलकुल झूठा है"—अपनी बात समाप्त कर वह वेग से घोड़े के पास गई। उसका अगाड़ी-पिछाड़ी खोल दिया। रस्सी से उसका मुँह बाँध झट उस पर सवार हो गई और कस कर एक ऐसा एंड़ दिया कि घोड़ा नौ-दो ग्यारह हो गया ! सग्राम अवाक् हो यह सब देखता रह गया ! जैसे उसे काठ मार गया हो। वह कब तक उसी दशा में खड़ा रहा, इसका उसे तब ज्ञान हुआ जब जयश्री वापस आ गई। वह और घोड़ा दोनों पसीने में लथ-पथ हो रहे थे। वह उतर पड़ी। घोड़े के अयाल को सहलाते हुए बोली—"तू मेरे पास रहे तो तुझे कभी उपवास न करना पड़े। कल रात

तेरा थका-माँदा मालिक सो गया था।" घोड़े ने जैसे जयश्री का समर्थन करने के लिए सिर हिला दिया।

संग्राम गंभीरता के साथ बोला—"आप बड़ी अच्छी घुड़सवारी करती है! मुझे यह न मालूम था। मैंने जो कुछ कहा उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। ठीक उसी वक्त पुजारी स्नान कर लौटा। जयश्री को पसीने में तर देख बोला—"आज फिर चुपके से घोड़ा खोल लेगई थी न? यह मैं समझता था। क्षमा करना बेटा इसे घुड़सवारी से बड़ा प्रेम है। इसका...कहते-कहते उसने अपनी जबान काट ली। इसके बचपन में मेरे पास एक टट्टू था। यह अक्सर उस पर सवारी किया करती थी। जा बेटी, देवी के रागभोग के लिए सामग्री तैयार कर।" फिर पुजारी चला गया। जयश्री सिर नीचा किये बोली—'मैं भी कितनी असावधान हूँ। रोज का काम भूल गई। देवी के भोग के लिए प्रसाद भी न बना पाई, आपके लिए जलपान भी न बना सकी। आप भी मुझे कितनी फूहड़ समझते होंगे।'

'आपका वह रूप और चेहरे का भाव जब आप घोड़े से, उतरीं, मुझे बहुत दिनों तक स्मरण रहेगा। मैं आपके उस रूप और भाव में देश का बहुत बड़ा भविष्य देख रहा हूँ। जिस तरह इस देश में नवदुर्गा, कात्यायिनी, जगदम्बा, विन्ध्यवासिनी, ज्वाला, और कामाक्षा आदि की पूजा हो रही है उसी तरह एक दिन 'जयश्री' की भी पूजा होगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

"तुम पुरुषों में यह सब से बड़ा दोष है, जब देखो तब स्त्रियों की प्रशंसा करने लगते हो। उन्हें देवी और भगवती बनाने लगते हो पर जब मानव कमजोरियाँ आ दबाती है, तब तुम उन्हें अपने हाथ का खिलौना समझने लगते हो। मैं कहती

हूँ यह दोनों गलत है। तुम उन्हें अपनी ही तरह मनुष्य समझो, देवी भगवती या खिलौना नहीं।"

संग्राम गम्भोर हो बोला—"मैं सोचता था कि आप मन्दिर के पुजारी की एक मामूली कन्या है। रूप और सौन्दर्य तो आप में देखता था, पर यह न जानता था कि आप वीर और विद्वान भी हैं।"

'फिर वही बात' जयश्री ने कहा। तभी पुजारी ने पुकारा! जयश्री तब, संग्राम को अकेला छोड़ चली गई!

उसके घंटे भर बाद संग्राम के कमरे में जब जयश्री, देवी का प्रसाद लेकर उपस्थित हुई तब उसका रूप कुछ और ही था। रक्त वर्ण की सारी के भीतर उसका लाल शरीर जैसे वस्त्र से मेल कर रहा था। उसके ललाट पर लाल चन्दन की टीका चित्रित हो रही थी। सिर के बाल खुले थे। बालों में रक्त वर्ण के फूल गुंथे थे। उसका वह रूप देख, संग्राम सहम उठा। उसे जयश्री साक्षात देवी सी लगी। वह अभ्यथना में उठ पड़ा।'

जयश्री बोली—'यह देवी का प्रसाद है, दादा ने आपके लिए भेजा है।' संग्राम ने प्रसाद ले लिया पर खा न सका। जयश्री फिर बोली। यह खाने के लिए है, देखने के लिए नहीं। खाइये। और यह बताइये कि आज जाकर आप फिर कब वापस आयेंगे।

"यह क्यों आप पूछ रही हैं।"

जयश्री मौन हो संग्राम को देख रही थी। वह इसका क्या उत्तर देती। उसे मौन देख संग्राम बोला—आज कल परीक्षा निकट आ गई है। वैसे मैं तो आज की शिक्षा की कोई उपयोगिता नहीं देखता, फिर भी माता जी की आज्ञा तो माननी ही पड़ती है। परीक्षा बाद लौटूँगा।

अपने मनोगत भावों को दबाती हुई जयश्री बोली—'शिक्षा

प्रणाली को दोष पूर्ण कह कर, पढ़ना लिखना छोड़ देना तो उचित नहीं है !"

"पढ़ लिख कर क्या होगा देवी ! हमारी पढ़ाई लिखाई की उपयोगिता जब तक दासत्व वृत्ति तक सीमित है तब तक वह किस काम की ? मैं तो उस शिक्षा और पढ़ाई लिखाई को श्रेष्ठ मानूँगा जिसका उपयोग देश को सुखी करने में हो सके। मेरा विचार है कि मैं पढ़ाई लिखाई छोड़ कर एक ऐसा दल बनाऊँ जिसका लक्ष्य, व्यक्तिगत लाभ हानि से ऊँचे हो।'

'इस तरह का विचार सफल न होगा !'

"ऐसा तुम कहती हो जयश्री ? तुम न कहो। यदि तुम सरीखे युवक और युवती ऐसे विचार से रखेंगे तो, फिर आगे कौन आयेगा !"

'मैं इस तरह के विचार में विश्वास नहीं करती। ऐसे विचार से अपने को क्या सुख मिलेगा। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम जैसे होनहार युवक जिन पर वृद्ध माँ बाप आशा लगाये बैठे हैं, जिन्हें अपनी पुत्रियाँ सौंपने के लिए अनेक पिताओं में होड़ सी लगी है, वह अपनी जान जोखम में डाल, अपने सम्बन्धियों की तमाम आशाओं और आकांक्षाओं पर तुषारपात क्यों करना चाहते हैं।'

"जयश्री ! चीख़ कर संग्राम ने कहा—तुम्हारे विचार ऐसे निर्बल है; मुझे नहीं मालूम था, अन्यथा.. वह कुछ कहना ही चाहता था कि पुजारी ने आवाज़ दी और वह बाहर चला गया। अकेले में होकर जयश्री मुस्करा उठी। "तुम धन्य हो संग्राम और धन्य है तुम्हारी माँ जिसके तन से तुम पैदा हुये। तुम चाहो तो फूलों की शैय्या पर सो सकते हो, एक से एक सुख और आराम उठा सकते हो, पर वैसा न कर औरों के लिये कष्ट

का जीवन उठाने जा रहे हो। तुम्हें ऊँचे से ऊँचा पद मिल सकता है पर तुम्हें उनसे कोई अनुराग नहीं। तुम्हारे जीवन के सुनहले स्वप्न में, आराम और विलासिता को कोई स्थान नहीं! दूसरों के लिये जीने वाले मनस्वी युवक तुम मनुष्य नहीं देवता हो देवता। तुम पूजा के पात्र हो। तुम्हारा यह मामूली वेश और रहन सहन आकर्षण का कारण चाहे न भी हो, पर श्रद्धा का कारण अवश्य है। जयश्री को लगा जैसे वह एक घने जंगल में अकेली घूम रही है। उसके सामने जंगल के बीच स्वच्छ जल का एक बड़ा सा सरोवर है। उस सरोवर में रक्त कमल खिल रहे हैं। सरोवर के केन्द्र में एक बहुत बड़ा कमल धीरे धीरे विकसित हो रहा है और वह उसी कमल की ओर बड़ी वेग से बढ़ी जा रही है। वह उसी जाग्रत-अवस्था में स्वप्न सा देखने लगी। वह जलाशय के किनारे घूमती हुई बड़े कमल की ओर निर्निमेष दृष्टि से निहार रही थी।

धीरे धीरे जलाशय में भारी आवर्त हुआ। फिर जल के भीतर से एक नौका निकली, जो खाली थी। वह धीरे धीरे किनारे की ओर आई। तब जयश्री उस नाव में जा बैठी। नाव मन्थर गति से सरोवर के वक्ष पर हिलोरे लेती थिरकती एक ओर को अपने आप बह चली। एक हल्की सी तरंग उठी। वायु में एक मीठा एक नीरव प्रकम्पन हुआ। सहसा कमल पुष्पों के कोष में संचित पराग अपने अपने घर से निकल वायु को वाहन बना, अनन्त से मिलने के लिए उड़ चले। झर झर कर बहने वाली वायु का स्पर्श पा जंगली वृक्ष गा उठे। प्रकृति अपनी निराली और मीठी चितवन से जयश्री को देख रही थी और जयश्री नाव पर बैठी चली जा रही थी, अज्ञात दिशा की ओर। उसका मन उत्साह और उल्लास पूर्ण था। उसके रोम

रोम से आनन्द की मीठी मीठी सीत्कार निकल रही थी तभी एक मीठी तान उसके कानों में पड़ी। स्वप्न लोक में विचरण करती हुई जयश्री को वह तान इतनी प्यारी लगी कि वह अपना सुध बुध खो बैठी। नाव चलते चलते उस छोर पर लगी। छोर से सटा एक रमणीय उद्यान दीख पड़ा। उसमें चारों ओर रंग विरंगे पुष्प लहरा रहे थे। भीनी मस्त सुगन्ध वायु चारों ओर फैल रही थी। जयश्री नाव से उतर उद्यान के भीतर चली गई। उसने वहाँ सैकड़ों रूपवान युवकों को घूमते देखा। एक एक से बढ़ कर सुन्दर। कुछ क्षण बाद झुण्ड की झुण्ड बालिकायें केवल पुष्पाभरण से सुसज्जित तितलियों सी मंडराती उद्यान में दीख पड़ीं। उनमें से हर के हाथ में बड़े मनोहर गजरे थे और वे थिरकती हुई युवक समूह की ओर बढ़ रही थीं। इसी बीच एक नया कौतूहल हुआ। एक अत्यन्त रूपवान एवम् भव्य युवक गले में बड़ी मोटी सी मणि माला पहने, हाथ में सूर्य चिन्हित पताका लिये आकाश मार्ग से उतरा। उपस्थित युवक एवम युवतियाँ उसका स्वागत करने के लिये उसकी ओर दौड़ीं। उस दैवी युवक को घेर कर उस पर पुष्प वर्षा करने लगीं।

जयश्री अवाक् हो देखती रही यह अनुपम दृश्य। कुछ समझ न सकी। सभीत हो एक झुरमुट में छिप आगे का दृश्य देखने लगी। देखते देखते युवक एवम युवती आपस में जोड़े चुनने लगे। युवतियाँ उस दैवी युवक के पास से होकर गुजरतीं, उसकी ओर हाव भाव से निहारती उसके गले में पुष्पमाला डालतीं पर वह किसी की ओर न निहारता। मौन खड़ा था। अन्त में जब युवक और युवतियों के जोड़े तैयार हो गये, तो वह एक ओर को अकेला चल पड़ा। लगा जैसे उसे अपनी जोड़ी नहीं मिली। वह आगे बढ़ता जा रहा था। सब के सब युवक

और युवतियाँ उसके पीछे चल पड़े! वह उस झुरमुट के पास तक आया जहाँ जयश्री छिपी थी। धीरे धीरे उसने झुरमुट में प्रवेश किया और जयश्री के गले में एक पुष्पमाल डाल दिया, तब अन्य युवक और युवतियों ने उसके चरणों में फूल भेंट किया। जयश्री चीख पड़ी। तुम लोग यह क्या कर रहे हो। मुझ पर इन फूलों को न चढ़ाओ। इन पर चढ़ाओ।' कहते कहते वह उठने का उपक्रम करने लगी कि वह जाग पड़ी। उसने देखा संग्राम एकटक उसकी ओर निहार रहा है।

वह कुछ बोलना ही चाहती थी कि एक बड़ा जन समूह सामने से आता दीख पड़ा। तब दोनों की बातें अधूरी रह गईं।

"देखते देखते, समूह सामने आगया। संग्राम ने देखा रक्त से लथपथ एक लाश को कई व्यक्ति टाँगे हुये हैं।"

घबड़ा कर, संग्राम ने पूछा—"क्या मामला है।"

समूह का एक व्यक्ति कुछ दूर आगे बढ़ कर बोला—यहाँ से लगभग तीन मील दूर राजपथ पर यह लाश पड़ी मिली है। इसमें अभी कुछ जीवन शेष मालूम होता है। संभव है उपचार से ठीक हो जाय।

तभी जयश्री झपट कर भीतर गई। साफ रुई, वस्त्र, जल तथा शीशियों में रखी औषधियाँ ले आयी। जयश्री ने बड़ी सावधानी से घायल के घाव साफ किये, फिर लेप लगा कर पट्टी बाँध दी। उपरान्त मुलायम गद्दे पर लिटा दिया। नली द्वारा गरम गरम दूध भी उसके मुँह में डाल दिया गया। उपचार के एक घंटे के उपरान्त घायल ने बड़े कष्ट से साँस लिया।

जयश्री ने बताया, अब रोगी खतरे से बाहर है, पर चोट कड़ी है और तभी पूछ बैठी, आखिर यह सब कैसे हुआ।

"मैं प्रातःकाल अपनी घोड़ी पर यहीं से रवाना हुआ। रात को

यहीं था। प्रस्थान के समय अंधेरा था। रास्ता साफ न दीख पड़ता था। मुझे अपने मन्तव्य स्थान पर शीघ्र पहुँचना था इस लिये तेजी से जा रहा था। कुछ ही दूर गया होगा कि एक और पथिक मिल गया। वह देखने में युवक सा जान पड़ता था। पर मैं साफ़ नहीं देख सका कि उसकी ठीक अवस्था क्या थी। वह भी सवार था। बेतहाशा भाग रहा था। मैं तो उससे ठोकर खाकर गिरते-गिरते बचा। उसे रोकना चाहा, पर वह न रुका। मुझे उसका आचरण कुछ सन्देह पूर्ण मालूम हुआ। कारण जब वह बिल्कुल मेरे पास आया तो मैंने देखा उसका चेहरा ढँका हुआ है।

मैंने उसे रोक कर कुछ पूछना चाहा, पर वह न रुका। मैंने डाँट कर कहा—"ठहरो! पर वह न ठहरा। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर किसी वस्तु के गिरने जैसी 'धप' की आवाज हुई। एका-एक मेरी घोड़ी भड़क उठी। मैं गिरते गिरते बचा। मैं घोड़ी से उतर पड़ा। मेरे हाथ में एक छोटी सी मशाल थी जिसे मैंने रात बीत जाने से जलाई नहीं थी। उस अन्धकार में मुझे जब कोई चीज साफ साफ न मालूम हुई तब मैंने मसाल जलाई। तभी एक दूसरी आश्चर्य जनक घटना घटी।

"मैं उस वस्तु को गौर से देख ही रहा था कि वही सवार बेग से लौटा और बड़ी कुशलता से मेरा मसाल छीन ले गया।

"मसाल छीन लेगया!" दुहराते हुए संग्राम ने भयपूर्ण चीत्कार किया। वहाँ जितने भी लोग खड़े थे, सभी के चेहरे पर आतंक छा उठा! "उसके बाद? संग्राम ने पूछा!

उसके बाद मैं कुछ देर तक निस्तब्ध खड़ा रहा। धीरे धीरे भगवान भास्कर ने अपनी आभा फैलायी, तब मैंने देखा। वह

वस्तु किसी अभागे मनुष्य का घायल शरीर था। फिर बड़ी चेष्टा कर उसे यहाँ तक ले आया हूँ।

"यह सब क्या हो रहा है ! क्या आप बता सकते हैं, यह अभागा व्यक्ति कौन है ! इसने किसका क्या बिगाड़ा था ! किसने इस पर इतनी बेरहमी से हमला किया। वह कौन था।

"यह सब मैं एक भी नहीं जानता।" उसी ने कहा।

"आप यहाँ कैसे ले आये।"

"जब मैं घायल पर झुका उसका निरीक्षण कर रहा था, एक वृद्ध व्यक्ति साधु जैसे वेश में आया। बोला, इसे नगरकोट ले जाओ, स्थविर की लड़की प्राथमिक उपचार जानती है।"

× × ×

इन्दु की धारा सभा के सदस्य सदा से राज पर शासन किया करते थे। राजा सदा से उनके हाथ का कठपुतला हुआ करता था। लेकिन जब से नये इन्दुपति गद्दी पर बैठे, धारा सभा के सदस्यों को ऐसा लगा जैसे वे अपनी पुरानी ताक़त क़ायम न रख सकेंगे। इन्दुपति राज-राजेश्वर महान वीरेन्द्रकुमार ने गद्दी पर आते ही राज-व्यवस्था में कुछ ऐसे हेर-फेर कर दिये कि सचमुच धारा सभाइयों की ताक़त जाती रही। राजा ने सारी शक्ति अपने में केन्द्री भूत कर ली। देखने के लिए तो धारा सभा मृत प्राय हो गई। अनेक धारा सभायी, राज छोड़ कर जंगलों में जा छिपे, लेकिन छिपे-छिपे वे राजा से अपने अपमान का बदला लेने का प्रयत्न भी करते रहे। उनके गुट्ट में बड़े भयंकर धूर्त और विनाशकारी व्यक्ति थे। ये लोग व्यवस्था को अव्यवस्थित करने के लिए अनेक उपाय काम में लाने लगे। फलतः इन्दु अशान्ति का केन्द्र बन गया। चारों ओर राजसत्ता बदनाम होने लगी। इन्दु की इस अशान्ति मय

परिस्थिति से वे लोग जिन्हें न धारा सभा प्यारी थी और न राजा, बल्कि जिन्हें अपनी जन्ज-भूमि प्यारी थी चिन्तित हो उसकी रक्षा का उपक्रम करने लगे। इनके प्रयत्नों का फल यह हुआ कि धारा सभा वालों का षड्यन्त्र पूर्ण सफल न हो सका। तब इन लोगों की एक गुप्त बैठक हुई और उन्होंने नये उपाय से काम लेने की बात सोची। इसी वक्त इन्दु के पूरब में मौनस नाम की एक नई जाति का अभ्युदय हुआ। कुछ ही वर्षों में मौनसों ने अनेक छोटे-बड़े स्थानों पर अधिकार कर लिया। इन्दु के शुभचिन्तकों को यह भी पता लगा कि धारा सभायी इन मौनसों से मिल इन्दु की शासन-व्यवस्था उलटने का षड़यन्त्र रच रहे हैं।

उस दिन नगरकोट में हुई दुर्घटना का समाचार सुन लोग तरह तरह की आशंकायें करने लगे। क्योंकि घायल व्यक्ति राजा का एक बहुत बड़ा उच्च कार्यकर्त्ता था। जब इतने बड़े कार्यकर्त्ता पर इस तरह आक्रमण किया जा सकता है, तब भला छोटों की क्या गिनतो होगो।

घायल धीरे-धीरे अच्छा हो रहा था। राज्य की ओर से निपुण चिकित्सक दवा कर रहे थे। घायल इस योग्य न था कि वहाँ से हटाया जाता इसलिए उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध नगरकोट में ही किया गया। परिणाम यह हुआ कि अब नगरकोट एक राजनीतिक स्थान हो गया।

जिस दिन, घायल के स्वास्थ में इतना सुधार जान पड़ा कि वह कुछ बोल सके, उसके कमरे में एक छोटी-सी सभा लग गई। उसने अपने ऊपर होने वाले भयंकर आक्रमण की कहानी सुनाई और सारी परिस्थिति लोगों के सामने स्पष्ट रूप से रख दी। तब उपस्थित लोग भय से पीले हो पड़े। धारा सभा के लोगों की शक्ति और साहस यहाँ तक बढ़ जायगी, इसका किसी

को गुमान तक नहीं था। कुछ देर के लिए वहाँ घोर निस्तब्धता छा गई। लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

तब घायल ने फिर कहा—"आप सब विशेष चिन्तित न हों। मुझे चलने-फिरने लायक हो जाने दें, फिर एक दिन इन्दु के शुभचिन्तकों की गुप्त बैठक कर और भावी कार्य-क्रम निश्चय कर डालें।"

घायल को बात सबको पसन्द आ गई। दूसरे दिन घायल को नगरकोट से राजधानी पहुँचा दिया गया। इधर संग्राम भी जो इस नई दुर्घटना के कारण इतने दिन नगरकोट रह गया था, अपने घर के लिए रवाना हो गया।

दो महीने बाद पुत्र को वापिस देख, माँ की आँखें ममता से भर आईं। पूछ बैठी—"इस तरह अनिश्चित अवस्था में कब तक घूमते रहोगे बेटा।"

कुछ उत्तर दिये बिना ही वह अपनी माँ को आज अन्वेषक की दृष्टि से देखने लगा।

माँ ने बेटे की इस गति को देखा तो उसका चेहरा भय से पीला पड़ गया। वह काँपती आवाज़ में बोली—"इस तरह मुझे क्यों देख रहे हो बेटा।"

"कुछ नहीं। हाँ यह तो बता दो, माँ मेरा पिता कौन हैं। मेरा कोई और रिश्तेदार भी दुनिया में है या नहीं। तुम यहाँ इस तरह क्यों रहती हो। तुम्हारा भरण-पोषण करने वाला कौन है। हमें तुम अन्न और वस्त्र कहाँ से देती हो।"

"इतनी दूर से थका-माँदा तू आ रहा है। न खाने की सुधि न नहाने की चिन्ता। यात्रा की थकान तो मिटा ले बेटा, फिर सब बता दूँगी।"

संग्राम जानता था कि यदि वह अधिक जिद करेगा तो

उसकी माँ को उसके प्रश्नों का उत्तर देना ही पड़ेगा, पर वह यह भी जानता था कि माँ उन बातों को शक्ति भर छिपा कर रखना चाहती है। संग्राम अपनी माँ को देवी समझता था। उसका ख्याल था कि उसकी माँ औरों के लिए चाहे जैसी हो पर उसके लिए, वह माँ है। तभी उसने धीमे स्वर में कहा—"न बताना चाहो तो रहने दो।"

माँ ने पुत्र की गम्भीर आकृति को देखा तो मन ही मन कह बैठी "यदि उसे मेरे जीवन की पिछली सारी बातें मालूम हो जायँ तो क्या उसके जीवन में एक झंझा वात नहीं आ जायगा।" पर उसे यह क्या पता था कि संग्राम का जीवन अब किसी झंझावात से कम नहीं है।

संग्राम उठा। घोड़े को अस्तबल में बाँध आया। स्नान आदि से छुट्टी पा, वह माँ के पास गया। देखा, माँ एक गम्भीर मुद्रा में पड़ी कुछ सोच रही है। संग्राम को ऐसा लगा मानों उसने उस बात को छेड़ कर माँ का दिल दुखा दिया है। तभी माँ के पास जमीन पर बैठता हुआ बोला। तुम हर बार मेरी यात्रा की कहानियाँ सुनने का आग्रह किया करती थी, पर अबकी क्यों नहीं पूछ रही हो माँ!

माँ का मन उमड़ पड़ा। बोली—"हाँ बेटा मैं भूल गई थी। अच्छा सुनाओ। कहती हुई उसने अपने होनहार पुत्र के चेहरे पर बड़े प्यार से हाथ फेर दिया।

माँ के कोमल एवम स्निग्ध करों का स्पर्श पा संग्राम की सारी थकावट दूर हो गई। तब वह बोला "सुनाओ बेटा अपनी यात्रा का वृत्तान्त! संग्राम ने माँ से हवेली की घटना और उसमें होने वाले प्रकाश के बारे में, उस क़िस्से को बताया जिसने उस पुजारी से सुना था। जिस समय वह हवेली की कहानी कह रहा था,

उसकी माँ भय से काँप रही थी। संग्राम ने जो अपनी माँ की यह गति देखी तो पूछ बैठा। तुम भूतों से डरती हो माँ! अच्छा जाने दो। अब मैं आगे न कहूँगा। पर है, बड़ी ही रहस्य पूर्ण बात माँ। नगरकोट के स्थविर से मैंने यह बातें सुनी हैं।

माँ ने अपने को सम्हाला। पुत्र से बोली "सो जा बेटा अब अधिक न जागो। बीमार पड़ जाओगे?"

संग्राम तब सोने चला गया।

बिस्तरे पर पड़ते ही वह निद्रा देवी की गोद में पहुँच गया। पुत्र को गम्भीर नींद में पड़ा देख माँ ने सन्तोष की साँस ली, पर उसकी आँखों से नींद तिरोहित हो गई। वह पड़ी पड़ी सोचने लगी—"आखिर अपने जीवन के भेद कब तक इस तरह छिपाती रहूँगी। एक न एक दिन तो उसे मालूम ही हो जायगी।" तभी किसी ने द्वार पर हल्का सा धक्का दिया। संग्राम की माँ चुपके से उठी। दरवाजा खोल बाहर निकल पड़ी। बाहर से साँकल लगा, दरवाजे से सट कर खड़ी हो गई!

आगन्तुक बोला—"ऐसा क्यों कर रही हो, तारा! कमरा खोलो।"

"चुप! भीतर लड़का सो रहा है।"

"लड़का सो रहा है तो क्या हुआ! दरवाजा खोलो। कोई देख लेगा तो।"

मैं दरवाजा न खोलूँगी। मुझ पर रहम करो सर्दार! तुम्हारे साथ सम्पर्क रखने का मैंने काफी पुरस्कार पा लिया। अब मुझे मुक्त करो। मैं अपने पुत्र के साथ कहीं दूर चली जाऊँगी। अन्यथा अब सारा भेद खुलना ही चाहता है।"

आगन्तुक ने एक भयंकर अट्टहास किया। उसकी निर्दयता पूर्ण हँसी उस निर्जन रात्रि में और भी भयंकर जान पड़ी।

"मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ सर्दार! मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। मेरे पुत्र का जीवन नष्ट न करो। तुम्हारे पीछे सब कुछ तो खो ही बैठी हूँ, एक पुत्र रह गया है, यदि वह भी न रहा तो मेरा जीना कठिन हो जायगा।"

"ओ जीने की लालसा रखने वाली कुतिया रास्ते से हटती है या नहीं। ऐसा कहते हुए आगन्तुक ने चाहा, बलपूर्वक उस स्त्री को दरवाजे के सामने से हटा दें कि किसी ने पीछे से उसके सिर पर कोई भारी चीज़ दे मारी। फलतः वह लड़खड़ा कर गिर पड़ा। तारा ने जो यह दृश्य देखा तो वह भयभीत हो, भीतर को भाग गई।

उसके थोड़ी देर बाद पड़ोस के एक दूसरे द्वार पर धक्का हुआ। भीतर से द्वार खोलती हुई एक युवती बाहर आयी। सामने खड़े व्यक्ति को पैरों में गिरती हुई वह बोली—'दद्दा, मैं लुट गई। तुम कहाँ थे। बदमाशों ने उनकी जान ले ली। भीतर आओ!'

'चलो' आगन्तुक ने धीमे स्वर से कहा और उस स्त्री के पीछे पीछे भीतर चली गयी। स्त्री ने प्रकाश कुछ तेज किया। तब आगन्तुक की श्वेत दाढ़ी चमक उठी। उसके चेहरे से दयालुता के साथ, एक दृढ़ विश्वास टपक रहा था। घायल के सिर पर हाथ फेरते हुए उसने पूछा—कहो खड्ग, अब तुम्हारा जी कैसा है।"

'अच्छा है, दद्दा धन्यवाद है इस युवती को, इसी की सेवा से मैं जीवित रह पाया हूँ।'

वृद्ध मुस्करा पड़ा। स्त्री बोली! दद्दा क्या इन्दु में अब यही सब होगा! राज सत्ता क्या इतनी कमजोर पड़ गई है कि वह आततायियों को कुछ भी दण्ड न देंगी! अभी तक ठाकुर

दिग्विजय की पत्नी और पुत्र का पता न था। अब यह एक दूसरी महान दुर्घटना घट गयी! इन्दु के मन्त्री पर इस प्रकार का घातक हमला किया जाय!' कहते कहते स्त्री उत्तेजित हो उठी।

'शान्त रहो बेटी, । हम सब प्रयत्न में हैं कि इन्दु को आततायियों के आतङ्क से मुक्त कर दें, पर यह काम इसलिये और भी कठिन दीख रहा है कि आपस के ही लोग सब कुछ कर रहे हैं। फिर किसे अपराधी समझा जाय और किसे नहीं। कुछेक सर्दार और कर्मचारी स्पष्ट रूप से तो राजसत्ता के सेवक बने हैं, पर अप्रकट रूप से यहाँ का सारा भेद विरोधियों को दे रहे हैं। आज से दो तीन माह पूर्व राजा के एक निजी सेवक की मौत जिस सन्देह पूर्ण स्थिति में हुई है, वह सभी को मालूम है। तारीफ तो यह है कि विरोधी वर्ग वाले इन हत्यायों का आरोप इन्दुपति पर ही छोप रहे हैं। एक गुप्त पर्चे में यहाँ तक कहा गया है कि इन्दुपति ने ही जान बूझ कर अपने उक्त सेवक की हत्या करवाई है। उसी पत्र में यह भी कहा गया है कि सूचना देने वाले गरीब प्रजा के बन्धु हैं और उनका एक मात्र ध्येय इन्दु को धन धान्य से परिपूर्ण करना है!

घायल बिस्तरे पर बेचैन हो बोल उठा 'फिर क्या होगा दद्दा! इन्दु की रक्षा का शीघ्र उपाय करो, अन्यथा, इन्दु का नाम निशान मिट जायगा।"

'तुम कैसे समझते हो मैं प्रयत्न में नहीं हूँ। हमारा संगठन तैयार हो गया है, हाँ अलबत्ते वह एक सूत्र में बँध कर एक अनुशासन के अन्तरगत अभी कार्य नहीं कर रहा है।'

इन्दु दो नदियों के बीच बसा है। दोनों नदियाँ नगर के दक्षिणी भाग में मिल जाती है। बड़ी का नाम है सकटा और

छोटी का नाम है विकटा। सकटा और विकटा मिल कर, महानद का रूप धारण कर हिमसागर में गिरती हैं। इन नदियों में पानी सदा भरा रहता है। ये बड़ी गहराई में बहती हैं। तभी नगर के लिये, स्वाभाविक खाई का काम देती हैं। नगर के तीसरी ओर एक कृत्रिम खाई बनी है। इससे यह नगर चारों ओर से सुरक्षित हो गया है। नगर के बीच एक चौड़ी नहर बहती है। यह नहर राजपथ का काम देती है। जिस समय भरी-पूरी होती है, लगती है जैसे इन्दु के गले की श्वेत उत्तरीय हो। नहर का नाम है, चन्द्रवती। चन्द्रवती के दोनों कूलों पर पर्याप्त चौड़े पथ बने हैं। पथों के दोनों ओर दोहरी पंक्ति में देवदारू जाति के वृक्ष लगे हैं। हर दो वृक्ष के बीच प्रकाश स्तंभ बने हैं। हर प्रकाश स्तंभ में रंगीन लट्टू लटक रहे हैं। गो धूलि के साथ ही इनमें रोशनी होती है। उस समय लगता है मानों इन्दु सोलह शृंगारों से विभूषित हो अपने प्रियतम से मिलने जा रही है युवक एवम युवतियों के झुंड के झुंड, रंग विरंगे वस्त्रों से सुमज्जित हो उस समय मन्द हास्य के साथ चन्द्रवती के दोनों ओर घूमते दीख पड़ते हैं। इन्दु की यह छटा एक अनूठी वस्तु मानी जाती है। भला, वह कौन अभागा सैलानी होगा जो एक बार चन्द्रवती के कूल पर बैठ कर इन्दु की संध्या की छटा निहारने के लोभ से अपने को अलग रख सके। "इन्दु के कुछ वृद्ध एवम समाज-सुधारक इस विलास वाटिका को संसार का कलंक कहते हैं और वर्षों से वे आन्दोलन कर रहे हैं कि विलास-गृह बन्द कर दिये जायँ! जवानी की रँगरेलियाँ मनाना, स्वच्छन्द मना युवतियों के साथ चन्द्रवती के वक्ष पर थिरकने वाली छोटी-छोटी नौकाओं में विहार करते समय जवानी की उमंग और उफान प्रकट करना यदि तुम अनुचित मानते हो तो तुम भी

उन लोगों की राय में राय मिला सकते हो। पर यदि तुम मेरी राय माँगो तो मैं कहूँगा कि दुनिया में चाहे जितने भी सुधार करो, पर जीवन से जवानी नहीं मिटा सकते। जवानी में अल्हड़पन को जो स्थान है, उसे नहीं हटा सकते। फिर तो ये विलास-गृह रहेंगे, और रहे आयेंगे। इन्हें देख कर नाक-भौं न सिकोड़ो। हाँ, अगर तुम्हारा जी यहाँ न लगे तो तुम रास्ता लो। पर मैं तो आज सारी रात यहीं रहूँगा।" टहलते हुए। दो युवकों में से एक ने दूसरे से कहा।

उसी ने कहना जारी रखा "उधर देखिये। कितनी जगमगाहट है उस अट्टालिका पर। चूने और ईंट के बने मोर आपने बहुत से भवनों के कंगूरों पर देखे होंगे, पर यहाँ जो मोर आप देख रहे हैं वे जीवित मोर हैं। कितनी मस्ती के साथ वे नाच रहे हैं, आप स्वयम देख सकते हैं।

यहाँ के आमोद-गृहों का संचालन स्त्रियाँ करती हैं। सामने वाले विलास-गृह की संचालिका मधूलिका है। पहले एक विलास-गृह में परिचारिका थी। अब स्वयम विलास-गृह की स्वामिनी हो गई है। इस विलास-गृह का नाम रस-कलश है। ऊपर देखिये। अट्टालिका के सबसे ऊँचे कंगूरे को। प्रस्तर की एक कलामयी मूर्ति किस अदा से अपनी कमर पर कलश सँभाले खड़ी है। रस-कलश के सामने का मैदान देखिये। कितनी सुन्दर-सुन्दर बहलियाँ और सकट खड़े हैं। इन्हीं में सैलानी लोग चढ़ कर यहाँ आते हैं। यहाँ रथ भी चलते हैं। इन रथों में जुते ऊँचे कोहान वाले बैल, भारी टाप और लम्बी क़द वाले घोड़े, जिस समय अपने गले की घण्टियाँ घन-घनाते हुए, राज-पथ पर गहरेबाजी करते हैं लगता है, मानों देवराज की सभा में उपस्थित होने से लिए देवगण इन्द्रपुरी को पधार रहे हों।

आज सारी नगरी में मधूलिका का नाम है। उस सी जवानी उस सा रूप, उस सी मस्त आँखें उसकी सी कला पूर्ण वेशभूषा से युक्त कोई और सार्वजनिक महिला सारे इन्दु में नहीं है! ऐसा कौन पुरुष है जो एक बार उसके सामने पड़ उसकी आँखों का शिकार न हो, फिर भी उसके निजी मित्रों की संख्या चार से ऊपर नहीं है। इन चारों में भी हर एक यही समझता है कि मधूलिका केवल उसी की है!

आइये 'रस कलश' के भीतर प्रवेश करें। संकोच न करें मधूलिका से मेरा भी परिचय है उसके जीवन में कुछ घड़ियाँ ऐसी भी होती हैं जब वह केवल मेरे ही साथ बिताती है। बात पूरी करते दोनों युवक भीतर पहुँच गए। तभी एक युवती को देख वक्ता ने कहा—"कहो देवी। आनन्द से तो हो ?"

"हाँ, खूब आनन्द है, पर इधर देखती हूँ, राजधानी में एक अजीब आतंक सा छाया है। इसीसे चिन्तित हूँ। आप तो जानते हैं कि विलास गृह तभी तक जीवित हैं, जब तक इन्दु में शान्ति है, अन्यथा विलासगृहों में ताले पड़ जायेंगे।

'तुम तो दिल दहलाने वाली चित्र खींच रही हो मधूलिका।' ऐसा न कहो मेरे ये मित्र बुरा मानेंगे।

'पर यह सच है! धारासभाइयों की शक्ति बढ़ती जा रही है। इन्दु के पड़ोसी राष्ट्र को हड़पने के बाद दुष्टों की आँख अब इस अभागे इन्दु पर लग ही रही है।

'जाने भी दो इन बातों को मधूलिका, जब जैसा आयेगा, देखा जायगा। कुछ हमी पर तो यह बात नहीं है। फिर हम और तुम क्यों इतनी चिन्ता करें। जब यहाँ के राजा को कोई चिन्ता नहीं है तब हम क्या कर सकते हैं।'

'तुम···' मधूलिका अपनी बात आरंभ भी न कर पायी थी

कि एक अजनबी ने विलासगृह में प्रवेश किया। मधूलिका ने उसे देखा तो एकटक निहारने लगी। आगन्तुक ने भी सीधे जलपान के कमरे की राह ली। उसने किसी को ओर न देखा और किसी से बातचीत की।

विलासगृहों में हर विचार के लोग आते हैं और हर मतलब से आते हैं पर सीधे सादे, कम और चतुर चालाक अधिक। सभी अपना अनूठापन जाहिर करते रहते हैं। इसलिए किसी पर एकाएक सन्देह भी नहीं किया जायगा।

नवागन्तुक के बारे में प्रकटरूप से यह पूछा भी नहीं जा सकता था कि वह कौन है, कहाँ से आया है। कारण ये बातें व्यवसाय की दृष्टि से हानिकर होती हैं।

'क्या देख रहे हो।' मधूलिका ने पूछा। फिर आप ही आप कह बैठी। 'ऐसे लोग इधर अधिक आने लगे हैं। जान पड़ता है नया व्यक्ति है। पहले पहल आया है। अभी पता लगवाती हूँ और तब वह बोली—"मोहनी, जलपानगृह के भीतर श्यामवर्ण का अभी तक एक नया यात्री गया है खोज करो वह कौन है।"

"बहुत अच्छा", कहती हुई मोहनो चली गई।

'मधूलिका मुस्कराती हुई बोलो—'कोई पत्र भी लाये हो।'

पत्र तो लेही आया हूँ, ये हैं मेरे मित्र, काश्यप इन्हें अपना विलासगृह दिखा दो।

'समझी। अभी आपका आज्ञा पालन करती हूँ। कोई है' मधूलिका ने पुकारा।

'आज्ञा' एक परिचारिका बोली—"इन्हें अपना विलासगृह दिखा दो।"

'जब वक्ता युवक का साथो परिचारिका के साथ भीतर चला

गया। मधूलिका बोली—"लाओ मेरा पत्र।" तभी उसने एक पत्र मधुलिका को पकड़ा दिया और वह पढ़ने लगी।

'क्या लिखा है मधूलिका।'

मुस्कराहट के साथ मधूलिका बोली—'लिखा क्या है, वही प्रेम भरी बातें, वही पुरानी राग। मेरी प्यारी मधूलिका तुम मेरी हो जाओ। सदा के लिये मेरी। बिना शम्बल के नारी की शोभा नहीं आदि आदि। अरे भाई इनसे कोई पूछे कि आखिर तुम मधूलिका को क्या समझा रहे हो। मधूलिका को शम्बल जरूर चाहिये, पर ऐसे पुरुष का शम्बल लेकर वह क्या करेगी जो पहले ही से किसी का शम्बल बन चुका है।'

पर, तुम्हारी इस निष्ठुरता से मधुमत्त जीवित न रह सकेगा, मधूलिका। वह अपना सारा मान सम्मान तुम्हारे पैरों पर उड़ेल चुका है। दुनिया उसे इसके लिये भला बुरा भी कहते है, पर वह इसका तनिक भी परवाह नहीं करता है। अपनी व्याहुता पत्नी को ठुकरा चुका है, अपने परिवार को तिलाञ्जलि दे चुका है, बस केवल तुम पर मरता है! और तुम्हारा उसके प्रति यह व्यवहार है मधूलिका। मैं अपने मित्र का पक्ष लेकर तुमसे प्रार्थना करने आया हूँ कि उसका मोम जैसा दिल पत्थर न बनाओ, अन्यथा अनर्थ हो जायगा।"

"अनर्थ कैसे हो जायगा।"

"तुम जानती हो वह इन्दु की सार्वजनिक सभा का मन्त्री है।"

"जानती हूँ।"

"यदि मन्त्री ही का दिमाग ठिकाने न रहा, तो सभा कैसे चलेगी।"

"फिर क्या करूँ" मधूलिका ने पूछा।

"लिख दो, तुम उसे प्यार करती हो।"

"इसे लिखने की क्या आवश्यकता है। यदि प्यार नहीं करती तो विश्वास तो करती ही हूँ। अपनी सारी सम्पत्ति उसी के पास तो रखती हूँ। जब से माँ मरी है, उसी की राय से चलती हूँ।"

"जब इतना करती हो तो, उससे यह कहने में क्यों संकोच करती हो कि तुम पर केवल उसी का अधिकार है।"

'यही तो कठिन है मेरे और मित्र क्या सोचेंगे। उन मित्रों में से कुछ तो ऐसे प्रभावशाली हैं कि एक रात्रि में रस-कलश का नाम निशान तक मिटा सकते हैं। उस समय तुम्हीं सोचो मैं क्या करूँगी। आय के साधन 'रस कलश' के बिना मुझे कौन पूछेगा।"

"मधुमत्त पूछेगा जो तुम पर मरता है!"

"यह तुम्हारी भूल है। मधुमत्त मुझे नहीं मेरे यौवन भरे शरीर को प्यार करता है जिस घड़ी इस शरीर से आकर्षण नष्ट हो जायगा, मेरा धन ही मेरा साथी होगा!"

"तुम्हारा अनुभव बहुत ही पूर्ण है मधूलिका, फिर भी मैं चाहता हूँ तुम मधुमत्त को निराश न करो। वह तुमसे प्रेम करता है।"

'सो तो है' अन्यमनस्क भाव से मधूलिका बोली। तभी मोहिनी आपड़ी!

मधूलिका पूछ बैठी "क्या पता लगा?"

सारे मकान में उस हुलिया का कोई व्यक्ति नहीं मिला?

"तब।"

"मैंने एक खिड़की से झाँका, देखा विश्राम वाटिका में कोई व्यक्तिझुरमुट में खड़ा है, और उससे कुछ' दूर हट कर दो

व्यक्ति चुपचाप बातें कर रहे हैं। तब मैं भी छिपती-छिपती वहाँ पहुँच गई। उनमें से एक कह रहा था 'सम्भव है खड़गसेन का आक्रमणकारी वही हो जो उस विधवा को अपने कस में रखे हैं! अब तो लगता है कि राजसत्ता बखबी निर्बल पड़ गयी है।"

दूसरा बोला—'तुम ठीक कहते हो! राजा निहायत निकम्मा है। उसे अपनी धुन के सामने और कुछ सूझती ही नहीं। जब मैं जवान था और जब रतनकुमार गद्दी पर थे, तब यहाँ आततायियों का नाम निशान तक न था।'

पहले ने कहा—'उसकी क्या कहते हो वह तो बड़ा बुद्धिमान था। जो चाहता था उसे पूरा कर डालता था। बात क्या जो कोई उसके मार्ग में रोड़ा अटकाये। अब तो चारों ओर बटमारी लूट और खसोट जारी है। हमारा जातीय गौरव खतरे में है। हमारी संस्कृति, सभ्यता, मृतप्राय हो रही है।'

दूसरा बोला—'तुम्हारी चोट कैसी है।

"अव तो घाव भर रहा है"—पहला व्यक्ति बोला।

मोहनी बोली—'और वह रहस्य पूर्ण व्यक्ति कुछ लिखने लगा। तभी मैं प्रकट हो गई।'

"फिर।" मधूलिका आश्चर्य से बोली।

"मैं, उस अजनबी के बगल में चली गई। तब वह तुरन्त हट गया। मैंने सावधानी से उसका पीछा किया। वह पेय गृह में बैठा है। सम्भवतः मौका देख रहा होगा, यहाँ से हटने का।"

मधूलिका ने खींच कर साँस लिया। फिर वक्ता युवक से बोली—"न जाने इन्दुवासी अब कब सावधान होंगे। अब तुम्हें एक काम सौंपना चाहती हूँ।"

"बोलो।"

"इस रहस्यपूर्ण व्यक्ति का पीछा करो?

"अरे बाप !"

"बाप, बाप न करो। यह इन्दु का काम है। यह व्यक्ति अवश्य ही जासूस है। यदि तुम्हें इसका पीछा करने में आना कानी हो तो मैं स्वयम् यह काम करूँगी।"

"मैं तैयार हूँ।"

"तो फाटक पर जाओ। अभी अभी वह निकलेगा !"

"जाता हूँ, पर काश्यप से न बताना। वह अभी छोकरा है।"

"अच्छी बात है, मैं उनसे न बताऊँगी। पर जल्दी करो।"

"मधुमत्त को क्या जवाब देती हो।"

"जैसा कहो।" मुस्करा कर मधूलिका बोली।

"मैं तुम्हें .."

"ऐसा ही होगा।" बीच में बात काट कर मधूलिका बोली।

मधूलिका अपनी बात समाप्त भी न कर पायी थी कि वह रहस्य पूर्ण व्यक्ति उसी ओर आता दीख पड़ा। मधूलिका इस समय अकेली थी। उसके हाथ में पाँच मुद्रायें रखता हुआ वह बोला—"जलपान का मूल्य है, स्वीकार कीजिये।"

मधूलिका दाम लेती हुई उसकी ओर देखने लगी, पर वह तत्काल तीर की तरह बाहर निकल गया।

रात्रि का नीरव एकान्त पा मधूलिका की विचारधारा उत्तेजित हो उठी और वह अपने पूर्व के जीवन पर विचार करने लगी। तब उसने आत्म कहानी के पन्ने उलटना आरंभ किया। उसके बड़े भाई बहुत बड़े ठीकेदार थे। उनकी आमदनी खूब थे। भाई की अकेली बहन होने के नाते बड़े प्यार दुलार से पाली गई। पन्द्रह वष की उम्र में एक सुघड़ नवयुवक से व्याही गईं। पोर पोर में आभूषणों से लदी जिस वक्त वह ससुर घर में

उतरी, लगा अंधेरे में रोशनी पहुँच गई। तीन दिन और तीन रात तक 'दुलहिन' देखने वालों का ताँता लग रहा। चौथे दिन पति दर्शन की सायत थी। ऐसा सुन्दर सलोना साजन पाकर मधूलिका फूली न समायी और कई रात कई दिन उसने यह न जाना कि पति के विशाल वक्ष को छोड़ उसने अपना मस्तक कहीं और रखा या नहीं। लेकिन भगवान से उसका वह नीरव सुख न देखा गया। महामारी ने पाँचवे महीने उसे विधवा और मातृ-हीन बना दिया। अभी जवानी उसमें कहाँ आ ही पाई थी? वह तो अभी बिल्कुल अबोध कन्या थी। पर उसे विधवा करने वाले को क्या! उसकी ससुराल के परिवार वालों ने उसे अभागिनी कह कर उसे अपने घर से निकाल मायके भेज दिया जहाँ विधवा भाभी को छोड़ कर अपना कोई और सगा न था। दोनों एक दूसरे को देखकर इतनी फूट फूट रोईं कि मकान की ईटें तक विलख पड़ीं। पास पड़ोस के लोगों ने, उन्हें सान्त्वना दी पर "दुख जग में कोई क्या बाँट लेता किसी का—सब परिचय वाले प्यार ही है दिखाते" के अनुसार उनका दुख कोई हल्का न कर सका। मधुलिका के मातृ परिवार में एक डाक्टर साहब बहुत आया करते थे। इधर उनका आना जाना और बढ़ गया। उनके सलाह से ननद और भाभी ने पढ़ना आरम्भ किया। वियोग को विस्मृति ने धर दबाया। दुनिया बदलने लगी। ननद अठारह की और भाभी बीस की हो चलीं। धवल परिधानों में वे सावन भादों की गंगा जमुना सी दीखती। चलतीं तो जमीन लचक उठतीं। वायु में बवंडल सा आ जाता, हँसती तो प्रकृति सिहर उठती, निहारतीं तो नीरवता, विचल हो जाती। दोनों एक सा भोजन करती, एक वस्त्र पहनतीं। लाखों की सम्पत्ति पर कानून ने उन्हें अधिकार दिलाया था। उस सम्पत्ति से निकली सुगन्धि उन्हें

सदा तरो-ताज़ा रखती थी। देखने वालों के दिल पर लगता उनकी जवानी कस-कस कर घूंसा मार रही हो। जवानों के दिल बेकाबू हो उठते। वृद्धों के दिल मसोस कर रह जाते। समझदारों की मौत हो जाती पर मधूलिका और उसकी भाभी श्यामकुमारी की जवानी की उफ़ान में किसी किस्म का अड़चन न पड़ सकी। इस तरह उनके जीवन के तीन वर्ष बीत चले, और जब उस बीते तीन वर्ष पर मधूलिका ने निगाह डाली तो वह सिहर उठी। उस वक्त वह बँधे हुए पुष्प कोष के समान थी। भौंरे आते थे, मँडरा कर चले जाते थे, उन्हें कोष के भीतर प्रवेश करने का मार्ग न मिलता था। वह पत्थर के समान ऊपर से नीचे तक कड़ी थी। उसकी आँखें निर्दोष थीं। उसका यौवन अछूता था। कृत्रिम शृंगार के अभाव में भी वह अलकापुरी की सुहाग भरी अप्सरा जैसी दीखती थी। उसे अपनी ही आत्मा आनन्द देती थी। वह तब साधना थी, निष्ठा थी, तप थी, मर्यादा थी, अनुशासन थी, शिष्टता थी, शीलवती थी, श्रद्धा थी, अनुराग थी, पवित्रता थी और थी बहुतों के लिए दूर छितिज में भागती हुई एक अनूठी आभा जो अपनी रोशनी से बहुतों को रोशनी दे रही थी। तभी उसके जीवन में झंझावात आया। इस वक्त वह छः श्रेणी समाप्त कर चुकी थी, सातवें में आई थी कि भाभी से अनबन हो गई। दोनों के अनेक समर्थक हो गये। आरम्भ में भाभी ने ननद को, सम्पत्ति में आधा हिस्सा दे दिया था, अब वह वापस लेना चाहती थी। लेकिन कानून और कुछ कानूनियों की मदद से मधूलिका को अपने हिस्से से हाथ न धोना पड़ा। फिर भी अब ननद और भाभी एक में न रह सकीं दोनों के जीवन के दो मार्ग हो गये! दो घर हो गये। दो नौकर-चाकर और दो मित्र। मित्रों के बटवारे में डाक्टर मधूलिका के हिस्से में पड़ा। और

तब मधूलिका ने डाक्टर के साथ अपने आरम्भिक परिचय का पन्ना उलटना आरम्भ किया। यह डाक्टर इन्दु के लिए प्रवासी था। कारण इन्दुवासी होते हुए भी यह सदा से बाहर रहा। यह व्यक्ति इन्दु का पहला व्यक्ति था जो डाक्टरी की शिक्षा से पूर्ण था। इसलिए इन्दुवासी इसका बड़ा सम्मान करते थे। लेकिन इसके सम्मान का कारण कुछ और भी था। दर असल यह उदार-विचार का एक ऐसा युवक था जो सार्वजनिक कामों में अधिक दिलचस्पी लिया करता था। सभा सोसाइटियाँ कायम करना, लोगों को संकट से उबारने में सहायता देना, इसका मुख्य काम था। डाक्टर था न। दुनिया में बीमारों की क्या कमी। यह भावुक डाक्टर बिना बुलाये मरीजों के घर जाता। गरीबों को मुफ्त औषधि तक दे देता। लोग इसे 'देवता' कह कर पुकारते। इस 'देवता' ने अपनी सेवा से लोगों के दिल में इतना गहरा विश्वास जमा लिया था कि लोगों की जवान बहू-बेटियाँ इसके यहाँ आतीं, घंटों रहतीं, अपना शरीर खोल-खोल परीक्षा देतीं, और अपने स्वास्थ्य के विषय में मधुर सलाह लेकर अपने घर जातीं। डाक्टर की मधुरता की इन्दु में इतनी अधिक शोहरत फैली कि लोग उसका असली नाम भूल कर उसे डाक्टर मधुमत्त नाम से पुकारने लगे—इन्दु में सार्वजनिक सभा स्थापित करने का श्रेय इसी डाक्टर को है। इसके राजनीतिक विचार बड़े उग्र थे, इतने उग्र कि इन्दु की धारा सभा के सदस्य इससे जलते थे। राजा, इसे अपना शत्रु समझते, जन साधारण भय खाता। धार्मिक विचार के लोग इसे नास्तिक कहते थे, पर यह डाक्टर जो था, इसलिए इस तरह की जो दुर्भावनायें जो इसके प्रति थीं, वह डाक्टरी की आड़ में छिप जाती थीं। स्वास्थ सम्बन्धी शिकायतों के बारे में मधूलिका सलाह लेती लेती, इस डाक्टर के निकटतम सम्पर्क में

आगई। जब भावी से मुकदमा चल रहा था, इस डाक्टर की वजह से मधूलिका को बड़ो सहायता मिली। अब डाक्टर मधु-मत्त चौबीस घंटे में एक बार मधूलिका के यहाँ अवश्य जाता दुनिया चाहे मरे या जिये पर वह गिन कर दो घंटा मधूलिका के यहाँ रहता। उसका हिसाब किताब समझता। गृह प्रबन्ध और अन्य समस्यायों की गुत्थियाँ समझता। धीरे धीरे डाक्टर ने अपने विचार से मधूलिका को प्रभावित करना आरम्भ किया। डाक्टर वेदशास्त्र, वृद्ध, ईश्वर, राजा हाकिम किसी के अनुशासन का समर्थक न था। उसका कहना था कि जो चीज़ उसकी तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती जिस बात को वह स्वयम अनुभव करके उसके दोष और गुण को नहीं जान लेता, उसे वह न मानता था। उसकी राय में नारी के लिए वैधव्य की प्रतारणा सहनी कोई जरूरी नहीं थी। जभी उसे मौका मिलता, वह वैधव्य के विरुद्ध मधूलिका को उसकाया करता। मधूलिका कब तक अपने को संभालती। उस दिन बीमार थी। डाक्टर आया। उसने आला लगाया। डाक्टर बोला—"आज मुझे स्पस्ट कहना होगा मधूलिका। अब तुम अपनी बीमारी की वास्तविक चिकित्सा करा डालो, वरन यह धन, यह सम्पत्ति किसी काम न आयेगी' तुम्हारी बीमारी का नाम है 'यौवन की टीश'! उस टीश की दवा है प्रीतिदान का स्थूल स्पर्श। जो मर गया, उसे भूल जाओ। शादी का यह पुरातन सिद्धान्त आज बेकार है। अपनी आत्मा में बैठे ईश्वर को अधिक कष्ट न दो। उसकी आवश्य-कता को समझो और उसकी माँग को पूरी करो और उसके दूसरे ही दिन मधूलिका ने अपने प्रथम पत्र में डाक्टर को लिखा था 'तुम्हारे विचारों ने मुझे पागल बना दिया है। मैं शादी के अर्थ को नहीं जानती। उनके साथ मैं केवल पाँच महीना ही तो

रही। आह ! अब उसका स्मरण क्यों करूँ! जाने दो। वह दगाबाज था। छलिया था। पूर्व जन्म का शत्रु था, बदला चुकाने आया था। और अब तक मैंने अपने को बहुत ही दबा कर रखा है, पर पीड़ा उभड़ पड़ी है तुम डाक्टर हो न। मेरी पीड़ा को समझ सकते हो। तुम्हारा हृदय चाहे जो भी कह रहा हो; पर अब कोरे उपदेशों से मेरी यह पीड़ा दूर न होगी। उस दिन जब उसी पीड़ा में बेचैन थी ! तुम आये। मेरे शरीर की जाँच की। मैंने देखा तुम्हारे स्पर्श मात्र से मुझे बड़ी शान्ति मिली। तुमने कहा भी तो था कि तुम्हारे पास मेरी पीड़ा की वास्तविक दवा है। तो फिर देते क्यों नहीं। मुझसे अधिक पीड़ित और कौन है, जिसके लिये तुमने उसे सुरक्षित कर रखा है। तुम्हारी बातें मेरा मन चुरा ले गई हैं। मेरा ख्याल है मेरा दिल तुम्हारे पास शान्त न होगा। तुम उसकी बेचैनी का अनुभव भी कर रहे होंगे।' उसके जवाब में डाक्टर ने कहा था, अब फिर जब पीड़ा उठे मुझे खबर देना। और तभी उसने दूसरा पत्र दिया था 'मेरे......मेरा मन आज बहुत उन्मन है, मैं बहुत बेचैन हूँ, आपने कहा था मुझे खबर देना। वही खबर दे रही हूँ। इस पत्र के पाते ही उठ पड़ना—जल्द आना। लेकिन.........यहाँ आकर वही नास्तिक पन न रखना। आस्तिकता बर्तना। मेरा मतलब है, मुझे अपना 'देवता या देवी' समझना ! तुम जब मेरे सामने रहते हो तो मैं बड़े बड़े आदर्शों की बात करती हूँ; पवित्रता पर लच्छेदार भाषण देने लगती हूँ। संस्कार जो पड़ा है। आज भी जब आओगे तब वही सीता, सावित्री, अनुसुइया का आदर्श तुम्हारे सामने रखूँगी, शास्त्र और गुरुजनों का आदर्श बखानूँगी, पर तब, पहले की तरह तुम उन्हें सुन कर चुपचाप न रह जाना। मेरा सबल विरोध करना'

तनिक भी मत डरना। समझे! सबल विरोध! अपने मुँह से मेरा मुँह बन्द कर देना। कोई ऐसा इन्जेक्शन दे देना कि मेरे वे 'रोग' जो आदर्श रूप में मेरे शरीर के अंग को पीड़ित कर रहे हैं, सदा के लिए दब जायें। मैं रोगी हूँ न! तुम जब मेरे तन में चक्कू चुभाओगे मैं तड़फ उठूँगी मुमकिन है चिल्ला भी उठूँ, पर तुम इसकी परवाह मत करना। पूरा चक्कू चुभा देना, समझे। डाक्टर हो न अगर दर्दीले बनोगे तो मेरा रोग दूर न होगा, मुझ पर दया मत करना। अब मुझे अपनी बीमारी दूर करनी है, वह तुम्हारी ही दवा से दूर होगी। मुझे लिटा देना, मेरा हाथ पैर बाँध देना, ताकि मैं भाग न सकूँ। और तब···। मुझे उस आदर्श रोग से सदा के लिए मुक्ति दिला देना तुम्हारा ही फर्ज होगा!"

तुम्हारी मधूलिका!

मधूलिका के इस पत्र को पाकर डाक्टर मधुमत्त मधूलिका के यहाँ गया। उस दिन मधूलिका सचमुच बेचैन थी। उसकी बीमारी को चाँदनी लग गई थी। ठीक वैसे जैसे ज्वराक्रान्त को ठंड लग जाती है और तब वह डबल निमूनिया का शिकार हो उठता है।

उसके बाद मधूलिका फिर अपने जीवन इतिहास के पन्ने उलटने लगी।

'मधुमत्त और मैं अपरिचित होते हुये भी एक दूसरे से परिचित हो गई। मैं उसके बहुत निकट पहुँच गई। तब मैं वही काम करती जो उसे भाता। तब हम दोनों के हृदय में प्रेम की भावना वृहत रूप में उठ पड़ी। मैं नीरव एकान्त में तुम्हें स्मरण करती। कभी कभी ऐसा लगता तुम रात दिन मेरे साथ हो। तुम मुझे प्रिय संदेश देते जान पड़ते।

कुछ ही दिन बाद मुझे यह मालूम हो गया कि मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। तुम मिलते तब मैं सकुचा जाती, कुछ कह न पाती पर जब तुम चले जाते तुम्हें बिसूर बिसूर रोती रहती। मुझे स्त्री जाति का स्वाभाविक गुण लज्जा परेशान करता और तुम्हें मेरी उदासीनता आगे नहीं बढ़ने देता। मैं पूछती हूँ क्या तुम मुझे पाने को बेचैन नहीं रहते। अवश्य रहते होगे, फिर भी तुम कोई प्रेरणा क्यों नहीं कर पाते। असमंजस में हो? पर तुम्हें असमंजस किस बात का! साहसिक बनो डाक्टर! उस दिन मैंने अपना दिल दिखा कर कहा था न 'यहाँ अधिक दर्द है'। तब तुमने अपने स्पर्श से उस दर्द को हल्का किया था। मेरा शरीर स्पन्दित हो उठा था। अंग-अंग से मीठा-मीठा दर्द उठ पड़ा था। और तब तुमने अपनी दोनों आँखों को मुझ पर बिछा दिया था। उन आँखों में उस वक्त कितनी बड़ी सहानुभूति थी, और मेरी आँखों में थी कितनी याचना मैं बखूबी समझती हूँ। तुम आगे बढ़ना चाहते थे पर एकाएक रुक गये थे। और थोड़ी ही देर बाद दुबारा लौट पड़े।

उस रात को! घनी भूत अँधियारी रात!! तुम्हारा रोशनी बन कर आना। फिर जाने की उतावली मचाना। मुझे अकेली छोड़ देना। मेरा रात भर तड़फना। वियोगाग्नि में झुलसना। उसके बाद मधूलिका पागल हो रो उठी। उस कोलाहलपूर्ण स्थान में उसकी रुलाई सुन उससे दो शब्द सहानुभूति का कहने वाला कोई न मिला। अपनी उस बेबसी पर मधूलिका क्षुभित हो कह उठा "जिस पुरुष ने मुझे इतनी अधिक वेदना दी, उसी को मैं फिर से अपनाऊँ! असंभव!!"

वह सोने जा रही थी कि बड़ा शोर होने लगा। वह घबड़ा

कर बाहर आई। भीड़ देख कर कुछ क्षण के लिए मौन हो उठी, फिर मोहनी को पुकारा !

"क्या है देवि" मोहनी ने पूछा—

"आज से तुम "रस कलश" की व्यवस्थापिका हुई। हर परिस्थितियों में इसकी रक्षा करना तुम्हारा धर्म होगा।"

"और आप" मोहनी ने घबड़ा कर पूछा।

मधूलिका, सामने से आती हुई भीड़ दिखाकर बोली—मैं उधर ही जा रही हूँ, सायंकाल को शेष बातें बताऊँगी—

मधूलिका हवा की तेजी से भीड़ की ओर बढ़ी। पास पहुँची तो देखा, लोगों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। प्राय: सभी सिर से नंगे हैं। लोगों में एक अजीब बेचैनी और घबड़ाहट फैल रही है। एक युवक सब के आगे बढ़ कर बड़ी ओज पूर्ण भाषा में कुछ कह रहा है। रह-रह कर भीड़ जय घोष कर रही है। मधूलिका, तब और भी भीड़ के पास चली गई। वक्ता कह रहा था "आज आठ सौ वर्ष से इन्दु देश निर्बाध्य रूप से स्वतन्त्रता का उपभोग करता आ रहा था। उसके जननायक राजा एक से एक कुशाग्र बुद्धि एवम राजनीतिक पहुँच के व्यक्ति हुआ करते थे। कई बार, शत्रुओं ने चाहा कि इन्दु की स्वतन्त्रता हड़प लें पर इन्दु वालों ने अपना रक्त बहा कर जन्म भूमि को पादाक्रान्त होने से बचा लिया, लेकिन आज शत्रुओं को मौका मिल गया है कि वे हमारा सुख छीन कर हमारे गले में दुख की बेड़ी पहना दें। हमारे राजा को कहीं गायब कर दिया गया है। यह काम एक सरदार की सहायता से हुआ है उस सरदार का उल्लेख करते हुए लज्जा और ग्लानि होती है। दुख तो इस बात का है कि जो लोग अपने को राजा के भाई बेटा कहते थे, वे हाथ पर हाथ धरे रह गये।"

मधूलिका बीच में बोल उठी "इतनी बड़ी दुर्घटना हो गई और किसी को पता तक नहीं चला। लगता है यह आग बहुत दिनों से सुलग रही थी।

मधूलिका बात पूरी भी न कर पाई थी कि घुड़सवारों की एक टोली आती दीख पड़ी। त्योंही भीड़ सिर पर पाँव रख कर भाग खड़ी हुई। उस भगदड़ में कोई इधर धक्का खाकर गिरा तो कोई उधर। कुछ लोग भागती भीड़ के नीचे दब गये। तभी वक्ता ने टेर कर कहा—निर्बल मानव का इतना बड़ा समूह आज तक मैंने कभी भी न देखा था। इतिहास में जब पढ़ा करता था कि कुछ जातियाँ पचहत्तर-पचहत्तर सहस्र की संख्या में हथियार डाल दिया करती है, तब मुझे उन पर विश्वास नहीं होता था, पर आज अपनी ही आँखों इतने बड़े मानव समूह को टिड्डी दल की तरह भागते देख अब उन पर हँसी नहीं आती। यदि आप चाहें तो एक एक मुट्ठी धूल उड़ा कर इतना अंधेरा कर सकते हैं कि शत्रु एक इंच भी आगे न बढ़ सकें। पर आप सब भाग रहे हैं! इन्दु के इतिहास की इस काली घटना पर अगली सन्तान कदापि विश्वास न करेगी। मैं यह टेर कह देना चाहता हूँ कि यह भागने का अवसर नहीं हैं, बलि देने का अवसर है। हमारा जो जातीय अपमान हुआ है, उस अपमान में हमें जल मरना चाहिए। युवक कुछ और कहना चाहता था कि एक गोली सनसनाती हुई उसके सिर के ऊपर से निकल गई, और अश्वारोहियों का दल भीड़ के सामने आ गया। बँचे खुँचे लोग शान्त भाव से अश्वारोहियों की ओर देखने लगे। युवक उबल पड़ा। भीड़ को सम्बोधन कर बोला—"हमारे पतन का एक नमूना यह अश्वारोही दल भी है, कल तक ये लोग इन्दु के नमकहलाल सेवक थे और आज! आज की कुछ मत पूछिये

सब से ऊँचे घोड़े पर सवार नगर के पुराने कोतवाल साहब हैं। इन्हें राजा अपनी नाक का बाल समझा करते थे। इन्हें साथ बैठा कर खिलाते थे।"

कोतवाल का मुँह लाल हो आया। वे बोले—"नयी सरकार का जो इतना घोर अपमान किया जा रहा है, उसे मैं नहीं सहन कर सकता। मैं चेतावनी दे रहा हूँ कि जो व्यक्ति अब एक भी शब्द हमारी नयी सरकार के खिलाफ कहेगा, उसकी जबान खिंचवा ली जायँगी।"

"खूब! बहुत खूब!! अगर साहस हो तो अभी मेरी ज़बान खींच लो।' तभी लोग इन्दु की जै जै नाद कर उठे। सारा आकाश जय घोष से पूर्ण हो उठा। सारा नगर जैसे उद्वेलित हो, भीड़ की ओर बढ़ता दीख पड़ा। भीड़ की संख्या बढ़ती देख कोतवाल और उत्तेजित हो बोला। 'मैं आज्ञा देता हूँ कि भीड़ अभी हट जाय, नहीं तो हमें भीड़ हटाने के लिए उचित उपाय करना पड़ेगा।"

'उचित उपाय करने का ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा।" भीड़ से आवाज आयी और फिर भीड़ ने जय जयनाद किया।

तभी कोतवाल फिर बोल उठा—"आप जिसके नेतृत्व में इस समय संगठित हुए है, वह पुरानी सरकार के भी समय में राजद्रोही गिना जाता था। आप उसके नियन्त्रण में रह कर अपनी हानि करेंगे। मौनसों की असीम ताकत के सामने आप मुट्ठी भर हैं। हम मूर्ख नहीं थे जो, मौनसों से सुलह कर बैठे आप शान्त होकर परिस्थिति पर विचार करें। इस समय इन्दु के जितने भी बड़े बड़े सरदार हैं, सभी मौनसों के शरण में हैं।

वक्ता युवक ने कहा—"वे इन्दु के मित्र नहीं हैं।" यह सब देख सुन मधूलिका चुपके से लौट पड़ी।

अध्याय २

"आपने लोगों ने मेरी चेतावनी से कुछ लाभ न उठाया। मैं इन तमाम आपदाओं का आभास अपने रस-कलस में बैठी बैठी पाती रहती थी।" मधूलिका ने कहा।

"तुम ठीक कहती हो मधूलिका, लेकिन इन अनर्थों का आरंभ कुछ आज हुआ तो हम अपने तात्कालिक उपाय से दूर भी करें। दर असल इन अनर्थों को आरम्भ यहाँ बहुत पहले हुआ है। तुम सब बच्चे हो। लो सुनो। इसकी जड़ में एक स्त्री का बहुत बड़ा हाथ है यद्यपि वह स्त्री आज जीवित नहीं है तथापि उसे जो कुछ करना था, वह कर गई, उसका श्राप तो हमें भोगना ही पड़ेगा, पाप चाहे इच्छा से हो या अनिच्छा से पाप का फल तो कता को भोगना ही पड़ता है। नारी का निरादर न करना चाहिये। निरादर से मेरा मतलब है उसको विषय भोग की वस्तु समझ उसके साथ नाजायज सम्बन्ध रखना अधर्म है, फिर चाहे वह उक्त स्त्री की इच्छा से हो या अनिच्छा से। विष तो विष ही है उसे चाहे सोने की प्याली में अमृत समझ कर पियो या विष—वह अपना धर्म न छोड़ेगा—

इसके साथ ही, इन्दु की शासन अव्यवस्था की तो कुछ पूछो मत। राजा अपनी व्यवस्था में किसी को हस्तक्षेप नहीं करने देता था। वह इन्दु को अपनी निजी सम्पत्ति समझता था। प्रजा हितैषी कौमों पर जब कभी व्यय करने का प्रश्न उठता

था तो वह धन को पलकों पर उठाता और रखता था। भला उससे पूछो, प्रजा का धन अगर प्रजा के काम नहीं आता तो फिर वह किस काम आयेगा। ऐसा धन कभी भी, मालिक को सुख की नींद नहीं सोने देता। इस व्यक्ति को अपने द्वारा संचित धन का बड़ा अभिमान था। उस अभिमान में उसने देश के सामन्तों को कुछ नहीं समझा। उन्हें बिना दाँत और विष की थैली का सर्प बना दिया। लेकिन सर्प तो सर्प ही है। उसे जितना भी मारा, अगर उसमें लेश मात्र भी साँस लेने की शक्ति है तो वह अपने शत्रु से बिना बदला लिए नहीं रहेगा।"

"तुम यथार्थ कहते हो, ठाकुर, लेकिन यह वक्त राजा का दोष दिखाने का नहीं है, यह वक्त है उपाय सोचने का जिससे हमारी मातृभूमि का खोया सुहाग हमें मिल जाय हमारा राजा वापस आ जाय। हम फिर उससे निबटते रहेंगे, यह हमारा घरेलू झगड़ा है, हमें अपने आपस में तय करना होगा, हमें इसमें बाहरी हस्तक्षेप मंजूर नहीं। जिन्होंने व्यक्तिगत मान अपमान के कारण इस देश पर यही नई आपदा बुलाई है हम उन्हें किसी भी दलील पर क्षमा करने को तैयार नहीं"—वृद्ध ने कहा और उसकी आँखें चढ़ आई उसके ओठ फड़फड़ा उठे।

"मैं भी तुम जैसा ही विचार रखता हूँ—मैंने जो कुछ कहा है, वह केवल मन की जलन कह दी है। सत्य को प्रकट कर देना कोई अपराध नहीं"—कह कर ठाकुर ने अपनी तलवार उठा ली,—बोले मैं इसकी सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि जब तक इन्दु स्वाधीन न होगा, मैं इसे म्यान में न रखूँगा।"

वृद्ध फिर बोल उठा—यह तलवार का युग नहीं ठाकुर। जिन राष्ट्रों के पास लक्षों भयङ्कर शतघ्नियाँ हैं, वे भी मौनसों का कुछ

नहीं बिगाड़ पा रहे हैं, फिर तुम्हारी वर्षों की जंग लगी तलवार क्या मुकाबिला करेगी !'

ठाकुर हतप्रभ हो बोला—"तब !"

वृद्ध कहने लगा—तब के लिए उपाय सोचना होगा। इतना कह कर वह मौन हो गया, तभी एक युवक हाँफता हुआ आया "आप सब सावधान हो जायें, एक घंटे में आपके इस स्थान पर छापा पड़ने वाला है।"

"तो क्या हम गिरफ्तार कर लिये जायेंगे।"

"जरूर। यही तो उनकी योजना है।"

"किनकी !"

"सरदार रेवानन्द की।"

"वृद्ध ने मुस्करा दिया। युवक बोला। 'तुम मुस्कराते हो दद्दा। यह मुस्कराने का वक्त नहीं है ! और सुनो, मौनसों ने रेवानन्द को इन्दु की धारा सभा का गुड़िया सभापति चुना है और अब से मौनसों के सत्वाधान में धारा सभा यहाँ की शासन व्यवस्था चलायेगी।"

"और हमारे जन नायक !" एक ने गला फाड़ कर कहा—

वे देश से निर्वासित कर दिये गए हैं अब वे इस देश में कभी लौटने न पायेंगे।

युवक की इस वक्तृता पर उपस्थित लोगों की आँखें भर आईं, पुरुषों का चेहरा सूख उठा, स्त्रियाँ विलख उठीं।

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ बेटा !"

"अपने दो आदमी सरदार रेवानन्द की अत्यन्त विश्वास पात्र सेवा में है ? उन्हीं की यह सलाह है कि हमारी पार्टी को इस समय यहाँ से कूँच कर देना चाहिये।

उसके एक घंटे बाद, नगरकोट की धर्मशाला में बैठी गुप्त

सभा भंग हो गई, और उपस्थित लोग गुप्त मार्ग से एक के एक पीछे एक निकल पड़े। तब महन्थ अपने दल के बचे खुचे व्यक्तियों को लेकर एक गुप्त स्थान के लिए रवाना हो गए।

साखू का जंगल ! सीधे छरहरे गाछ ! एक दूसरे से सटकर खड़े। आसमान चूमने के लिए ऊपर की ओर दौड़ते हुए। उनके नीचे कड़ी मिट्टी का धरातल ! सूरज की रोशनी छन-छन कर नीचे आ रही थी। न कहीं काँटे ! न पथरीली जमीन ! न बनैले पशु ! जान ही नहीं पड़ता था कि यह जंगल है। जंगल बीहड़ और भयावने हुआ करते हैं, पर यह जंगल जैसे जंगलों के इस कलंक को धोने के लिए उगाया गया हो। धूप बड़ी कड़ी होती थी। जहाँ छाया की कमी थी, वहाँ दुपहरिया नाचती हुई दीख पड़ती थी।

इसी जंगल के बीचोबीच चार-पाँच झोपड़ियाँ पड़ गयी। एक बड़ा सा झोंपड़ा सब के बीच में खड़ा हो गया। मानो झोपड़ियों के बीच एक झोपड़ा होना ही चाहिये था। शान्त ! नीरव ! न चिड़ियों का चहचहाना ! न वायु का तेजी से खड़खड़ाना ! न पत्तों और शाखाओं का बेसुरा अलाप। उन लोगों ने यहीं अपना वास स्थान बनाया। नाम रखा 'शक्ति आश्रम'।

एक दिन जयश्री एक सुघड़ साखू की गाछ में लता की तरह लिपटी खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक अस्पष्ट बेचैनी थी। आँखें उनीदी सी दीख रही थीं। आस-पास खड़े लोग उसे हँसाने, और प्रसन्न रखने के लिए तरह-तरह की बातें कर रहे थे। जयश्री का प्रसन्न चित्त रहना बड़ा आवश्यक था। वह दल के मस्तिष्क दयालदास के प्राणों से बढ़ कर दुलारी थी। उसका मुरझाया हुआ क्लान्त चेहरा देखकर वृद्ध की वृद्धावस्था को जूड़ी जैसे मार जाती थी, पर जब जयश्री हँसती-बोलती उछलती-

कूदती तो दयालदास की आँखों में नयी ज्योति आ जाती! वह बड़ी-बड़ी वीरता की बातें करता।

दयालदास के अतिरिक्त जयश्री की प्रसन्नता और अप्रसन्नता अन्य किसी को भी प्रभावित करती है या नहीं! इसका पता आज की दुपहरिया के पूर्व केवल एक व्यक्ति खड़गसेन को था, पर यह भेद आज औरों को भी मालूम हो गया।

जयश्री को बेचैन देखकर संग्राम की आँखों में न जाने कितना दर्द और कितनी उत्कंठा समा उठी। पर सब के सामने उसने अपने उस दर्द को प्रकट नहीं किया। उसकी वह बेबसी, खड़गसेन अच्छी तरह समझ रहा था। तभी उसने प्रस्ताव किया कि आज जंगल में जोड़ा बनाकर घूमना चाहिये। इस विचार को लेकर वह महन्थ से बोला "दादा मैं कुछ कहना चाहता हूँ।"

"कहो खड़ग?"

"मेरा प्रस्ताव है कि हममें से दो-दो आदमी, आज इस झोपड़ी के चारों ओर चार-चार कोस की दूरी तक का पता लगाने के लिए भेजे जायें इससे हम लोगों को यहाँ के बहुत कुछ भेद मालूम हो जायँगे।"

"बहुत ठीक! मैं भी यही चाहता था। हमें अभी न जाने कब तक यहाँ रहना है। इस स्थान को सुरक्षित बनाने के लिए इसके आस-पास की जानकारी रखना आवश्यक है। अच्छा तो दो-आदमियों का जोड़ा चुन लो।"

"कल मैं और जयश्री, संग्राम और मधूलिका, रूपकुमारी और मधुमत्त गए थे आज रूप को मेरे साथ और जयश्री का संग्राम के साथ जाने की आज्ञा दीजिये, और लोग भी अपने अपने पसन्द का साथी चुन लें।"

महन्थ! खड़ग की बातें सुन कर मुस्करा पड़े। उनका

मुस्कराना और लोगों के लिए हँसी का संकेत हो गया। और सभी खिलखिला कर हँस पड़े।

खड्ग लज्जा से लाल होता हुआ बोला, 'यदि आप को मेरा चुनाव पसन्द नहीं तो स्वयम् चुन दीजिये। मैं अब किसी ऐसे काम में आगे न आऊँगा।'

महन्थ आगे बढ़ कर उसी मुस्कुराहट के साथ बोले, 'मुझे तुम्हारा चुनाव पसन्द है खड्ग! तुम बुद्धिमान हो। विलम्ब न करो। जाओ!' एक छोटी सी टहनी तोड़ते हुए बोले, 'जिस समय मैं यह टहनी एक, दो, तीन कह कर हिला दूँ उस समय तुम लोग 'छू-मन्तर' हो जाना।

कुल दस बारह व्यक्ति थे। सब लोग अपना-अपना संगी लिये एक सीध में खड़े हो गये। महन्थ ने टहनी हिलायी और लोग किलकारियाँ मारते अदृश्य हो गये।

उन सब के चले जाने पर दयालदास ने पूछा 'इन नौजवानों को न खुश होते देर लगती है और न अप्रसन्न! यों इनका उत्साह देखो तो विचारे घर का आनन्द छोड़ यहाँ बनवास भोग रहे हैं। पर जब ये छोटी-छोटो बातों में आपस में रूठ बैठते हैं तब मैं तो बड़ा हताश हो जाता हूँ!'

वृद्ध बोले—'तुम हताश क्यों होते हो दयालदास। इस समय तुम भूल रहे हो कि तुम भी कभी जवान थे! और उस जवानी में तुम भी रूठा करते थे। इस तरह का रूठना ही तो जवानी है! जिस जवान या युवती में रूठने की शक्ति नहीं, अपनी भृकुटी को चढ़ा आँखें लाल कर नाक फड़फड़ा देने, बाँहें तान कर मुट्ठियाँ कस लेने की शक्ति नहीं, क्या वह भी अपने को जवान कह सकता है? क्या तुमने कभी गुस्से में भरी किसी युवती को नहीं देखा है? वास्तविक सुन्दरता यदि देखनी हो तो किसी

युवती को थोड़ा सा चिढ़ा दो। उसका सच्चा स्वरूप तभी तुम्हें दीख पड़ेगा। मेरी अवस्था इस समय साठ बरस की है और तुम भी ४५ से नीचे न होगे। ये जवान और लड़कियाँ मेरे लिए पुत्र और पुत्री सरीखी हैं। तुम्हारी यह जयश्री मेरी वह रूप, मधूलिका, कृष्णा इन्हें मैं अपनी ही बेटी समझता हूँ। ऐसी दशा में वासना का प्रश्न नहीं उठता। मैं सहज भाव से कह रहा हूँ। जब युवती क्रोध की मुद्रा में तन कर खड़ी होती है, उसकी आँखें थोड़ी सी चढ़ जाती हैं, बाँहों में कड़ापन आ जाता है तब नारी में जो चंडीपन होता है, वह मुँह-मुँह बोलता दीख पड़ता है। इसलिये, जब तुम इन्हें रूठा देखो तो कभी चिन्ता न करो। आपस में रूठने के बाद जब ये फिर एक होंगे तब ऐसे मिलेंगे जैसे पुष्प में सुगन्धि।"

दयालदास बोले "पर इनकी इस स्वच्छन्दता की क्या दवा है मैं इन्हें आग और फूस समझता हूँ।

'तुम जो बात सोचते हो वह ठीक नहीं! उनकी उपमा आग और फूस से ही क्यों दे रहे हो? उन्हें चुम्बक और लोहे से क्यों नहीं देते? चुम्बक और लोहा परस्पर आकर्षण मात्र ही किया करते हैं, कभी जलते नहीं! तुम्हारा यह सोचना ठीक नहीं है कि उनमें आग और फूस का सा ही गुण है! हम तुम यदि अपने अनुभवों से काम लेंगे तो वे कभी भी आग और फूस न बनेंगे। लोहा बनेंगे! फौलाद बनेंगे!'

'कैसे बनेंगे।'

'स्त्री और पुरुष सम्बन्ध की बातें स्पष्ट बता देने से बनेंगे जिन्हें हम छिपाते फिरते हैं! उस भेद का छिपाना ही सारे अनर्थों का मूल होता है। तुम्हें यह जान कर प्रसन्नता होगी कि शक्ति आश्रम का प्रत्येक स्त्री और पुरुष के उस गुप्त भेद को

बहुत अच्छी तरह जानता है। मैं उन्हें यह इस भेद को बताता रहा हूँ कि यदि वे अपने में यौवन, सौन्दर्य, तेज और विभूति को कायम रखना चाहते हैं तो उन्हें वे काम न करने होंगे जिनके करने से युवक की आकृति पीली पड़ जाती है, और युवती अपरिपक्वावस्था में ही माँ बन जाती है!'

'सरदार!' दयालदास ने जोर से कहा।

'तुम्हारा ख्याल है कि इस भेद को बताना अच्छा नहीं। यदि ऐसा ही है तो तुम उस ख्याल को ठीक कर लो या किसी दिन मैं तुम्हें सुबूत दे दूँगा कि मेरी यह नीति कितनी सफल हुई है। यदि ऐसा न होता तो क्या तुम समझते हो कि मैं कभी भी इन लोगों को जोड़ा बना कर इस जंगल के एकान्त में घूमने की स्वतन्त्रता देता! मुझे उनमें से हर एक के चरित्र पर विश्वास है। और उन्हें इस तरह एकान्त में मिलने का अवसर देने में भी एक विशेष रहस्य है। पुरुष के बल का किसी को पता नहीं लग सका है दयालदास! पर उस बल को धीरे-धीरे बढ़ाने की कला आज लोगों को बहुत कम मालूम है। तुम खुद अपना जीवन ले लो। जिस समय तुम जवान थे तुम्हारी पत्नी उर्मिला जीवित थी। तुम दोनों नगरकोट की धर्मशाला में अकेले रहा करते थे। तुममें कितना बल था तब! याद है उस दिन जब तुमने मेरे मतवाले हाथी की सूँड़ पकड़ कर उसे पीछे कर दिया था। और एक आज का दिन है!'

'ठाकुर दिग्विजयसिंह!' दयालदास चीख कर बोले।

'चुप!' दयालदास के मुँह पर हाथ रखते हुए महन्थ ने डाँट कर कहा।

धन्य हो प्रभु! तो तुम जिन्दा हो ठाकुर? महन्थ कृपाराम नाम से प्रसिद्ध होकर जीने वाले तुम हो ठाकुर दिग्विजयसिंह!'

'दयालदास ! इस भेद को अभी अपने तक रखना। इस समय प्रकट करने से बहुत सा खेल बिगड़ जायगा !'

दयालदास अवाक् हो विस्मय विस्फारित नेत्रों से उस साठिया ठाकुर को देख रहे थे जिसे उस दिन हवेली में मरा हुआ समझे बैठे थे। आज बीस वर्ष बाद ठाकुर दिग्विजयसिंह को देख पाये।

दयालदास को इस गम्भीर मुद्रा में देख महन्थ उन्हें झकझोरते हुए बोले, 'चलो दयालदास हम तुम भी कहीं घूमने चलें ! लड़कों के चले जाने से यहाँ दिल नहीं लगता।'

'चलिये।' दयालदास ने श्रद्धा के साथ कहा।

× × × ×

ठीक उसी समय जयश्री और संग्राम थक कर एक वृक्ष की घनी छाया में, विश्राम ले रहे थे।

जयश्री जोर-जोर से साँस ले रही थी। उसके हृदय का तो ज्वारभाटा उठ रहा था, संग्राम उसे रोकने की चेष्टा कर रहा था। जयश्री के आँखें बचा संग्राम ने जयश्री की ओर देखा। काली काली पुतलियाँ एक ओर पैंतालिस अंश का कोण बना उठीं। उसकी आकृति दोपहरी में खिले हुए कमल सी दीख पड़ी। उसके आवेश-युक्त चेहरे पर शोभा का मृदुल नृत्य हो रहा था। उसकी चढ़ी हुई आँखों में, गुलाबी सुरा की छाँप दीख रही थी। संग्राम उसकी इस चितवन को प्यासी आँखों से देख रहा था।

उसने संग्राम की इस प्यास को देखा तो उसकी पुतलियाँ नब्बे अंश पर आ गयीं। पतले होंठ, एक हलकी सी कम्पन कर उठे। भौहें मुस्कराती सी दीख पड़ीं। वह उषाकाल का सूर्यमुखी

पुष्प भी हो उठी। बोल उठी, 'तुम्हारी यह चुप्पी आखिर कब तक खुलेगी संग्राम ?'

संग्राम कुछ सजग सा होता हुआ बोला 'मैं नहीं कह सकता कि मेरी बोली तुम्हें भी कुछ सुहायेगी ! कल रात की...'

संग्राम कुछ और कहना ही चाहता था कि वह बीच में बोल उठी। 'इस समय तो कल की रात नहीं है ! आज तो आज की दुपहरिया छायी है।'

'हाँ। यह अच्छा ही है कि इस समय कल को रात नहीं है। कल की वह काली रात मेरे लिए बड़ी दुखदायिनी थी !'

"और मेरे लिए भी ! कल तुम कितने निर्दयी बन गये थे संग्राम !" कहते-कहते उसकी आँखें उमड़ पड़ीं।

संग्राम के भीतर छिपा हुआ पुरुष प्रफुल्लित हो उठा। पास सरकता हुआ बोला, 'सच कह रही हो, मैंने तुम्हारे साथ कल निर्दयता की। बोलो कौन सी बात निर्दयतापूर्ण जान पड़ी ?"

'तुम यदि इस तरह बोलोगे तो मैं कभी भी नहीं बताऊँगी !'

तब संग्राम के भीतर छिपा हुआ पुरुष कोमल हो उठा। उसने प्यार-भरी बोली में कहा, 'तुम्हें बताना ही होगा ! इस तरह मेरे हृदय पर तुम चोट नहीं कर सकतीं।'

'तुम्हारा व्यवहार बड़ा ही लज्जापूर्ण था।'

'कह लो ! मेरा व्यवहार लज्जापूर्ण था। तुमने जान बूझकर मुझे मधूलिका के साथ एकान्त में जाने के लिए बाध्य किया। मुझसे एक बात भी करना तुम्हारे लिए कठिन हो रहा था। तिस पर तुम कहती हो, मेरा व्यवहार लज्जापूर्ण था। कहते हुए संग्राम ने अपनी आँख फेर ली।

प्यार और नेह की छाप से भरे संग्राम के ये शब्द उसके

हृदय को बेचैन कर उठे। यही तो वह बोली थी जिसने उसे अपनी न रख कर संग्राम की बना दिया था।

तुम मधूलिका के साथ एकान्त में चले गये। घंटों उसके साथ रहे। तुम दोनों की मिली हँसी मेरे मन पर किस तरह हथौड़े की चोटें कर रही थी, मैं कितनी आहत हो उठी, इसे पूछना तो किनार रहा, अपने उस एकान्त-सेवन की सफ़ाई देनी तो दूर रही, उलटे मुझ पर क्रोध कर बैठे! तब मधुमत्त के साथ एकान्त में जाकर खुश होने का नकली रूपक बाँधने की चेष्टा करना क्या मेरा अपराध था! यदि नहीं तो तुम्हें मुझे ऐसी कड़ी सजा देने की कैसे आवश्यकता!'

'ओह! तो मधुमत्त के साथ एकान्त में जाना एक नकली रूपक था! मेरे व्यवहारों का जवाब मात्र था?'

'अवश्य! यदि तुम मेरे साथ रहे आये होते तो क्या वैसा होना कभी सम्भव था?"

संग्राम का चेहरा खिल उठा। जयश्री तुम्हारा यह सुन्दर अभिनय बड़ा ही अपूर्व था! मैं सच कहता हूँ मैंने उसे अभिनय न समझकर सच्चा व्यवहार समझा! मुझे यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं कि तुमने कल मुझे खूब छकाया और वह भावुक मधुमत्त तो मुझसे भी अधिक छका होगा बिचारा! पर यह तो बताओ, भला उसे तुमने किस अपराध का दंड दिया?'

'मैंने मधुमत्त को दंड नहीं दिया। उस समय जो भी सामने आता उसी को अपना साथी बना लेती। मुझे किसी पुरुष को दण्ड नहीं देना था! मुझे तो जलन हो उठी थी उस साँवली सी छोकरी मधुलिका से जिसकी आँखों में उसकी जवानी सावन-भादों की नदी की नाईं तोड़ मार रही है! तुम मेरी और मधुमत्त की मिली हँसी का उल्लेख कर रहे हो? मेरे साथ उसकी

घण्टे भर हुई बात का हवाला दे रहे हो? पर मधूलिका तुम्हारे सामने किस तरह हँस-हँस कर बात कर रही थी इसका उल्लेख शायद तुम न कर सकोगे। उसकी आँखों में तुम्हारे लिए जो प्यास दीख रही थी, उसके चेहरे पर तुम्हारे रूप ने कितनी निर्लज्जता ला दी थी! वह किस तरह अर्ध विक्षिप्त तन्द्रा में तुम्हारे बगल में बैठी तुम्हें निहार रही थी! तुम न व्यक्त कर सकोगे! सच कहती हूँ यदि वैसा दृश्य मैं एकाध बार और देख लूँ तो यह मानी हुई बात है कि मैं इस समुदाय में न रह सकूँगी। और तुम्हारे प्यार की स्मृति भी सम्भवतः.....!'

संग्राम झपट कर जयश्री का मुँह बन्द करता हुआ बोला, 'बेदर्द! अब आगे न कहो!'

संग्राम का हाथ हटाते हुए वह बोली, 'यह अभिप्राय नहीं है! तुम जानते हो'.....कहते-कहते उसका गला भर आया, आँखें सिक्त हो उठीं। वह फिर बोली, 'यदि मैं चाहूँ भी तो तुम्हारी स्मृति का अपने दिल से नहीं हटा सकती। कल की रात मैंने बड़ी कोशिश की संग्राम! जिस समय तुम लोग अपनी भावी योजना बना रहे थे, मैं आँचल में मुँह छिपाये रोती रही! यह आँचल अभी भी थोड़ा गीला है। तुम्हें भूल जाना चाहती थी, पर बेबस रही! मुझे अपनी उस निर्बलता को प्रकट करने में लज्जा हो रही है! पर संग्राम तुम्हारे सामने मुझे निर्लज्ज होने की भी एक साख है! एक शान्ति है! काश तुम भी यह बात समझते!'

'जयश्री आज एकाएक ये ढके भाव, तुम कैसे प्रकट कर रही हो? आज के पहले तुमने मेरे लिए कभी भी नहीं कहा। कभी भी अपने जीवन के इस भेद को नहीं बताया! आज एकाएक तुम्हें क्या हो आया?'

''कल तक इसकी आवश्यकता न थी संग्राम ! तुम मेरे साथ परछाईं की तरह रहते थे ! मुझे कभी न छोड़ते थे। किसी और के साथ मैंने तुम्हें कभी हँसते नहीं देखा ! मिलते नहीं देखा ! हृदय से समझती रही कि तुम जब इस तरह मेरे हो रहे हो तो भला मुँह से कहने से क्या होता है कि तुम मेरे हो, मैं तुम्हारी हूँ ! तुम मेरे रहे आओ मैं तुम्हारी रही आऊँ ! वह तो कल जब मैंने अपनी आँखों के सामने तुम्हें दूसरे के घर में जाते देखा ! मैं घबड़ा उठी ! मैं नारी हूँ ! सब कुछ सह सकती हूँ ! पर यह नहीं देख सकती कि मेरा प्यार—एक या दो घड़ी के लिए ही क्यों न हो—दूसरे की वस्तु बने। जिस समय मैंने तुम्हें वैसा करते देखा मैं मधुमत्त के साथ चल पड़ी ! पर वह केवल तुम्हारे व्यवहार की प्रतिक्रिया मात्र थी। संग्राम ! मुझे दुःख है। कह चुकी हूँ सारी रात जिस तड़पन में पड़ी रही वह मैं ही समझ सकती हूँ !'

"तुम्हारी ही तरह मुझे भी तुम पर उस समय सन्देह हो आया था, अन्यथा कल रात को मैं अवश्य मिलता। विश्वास रखो मेरे हृदय में तुम्हें छोड़ कर और कोई नहीं प्रवेश पा सकता ! मधूलिका मेरी पूर्व-परिचिता एक संगिनी है। वह हमारे दल की एक प्रमुख सदस्य की प्रेमिका है और मेरी पूर्व परिचिता भी। उसके बुलावे का उत्तर न देना असभ्यता होती या नहीं !"

''मैं ऐसी पूर्व-परिचिताओं से घृणा करती हूँ ! और ऐसी सभ्यता के लिए मेरे जीवन में कोई विशेष स्थान नहीं संग्राम' जयश्री ने रूखे स्वर में कहा।

सच कहता हूँ उसमें मेरा कोई अपराध नहीं था। मेरा स्वभाव ही ऐसा है। मुझे आशंका है कि तुम्हारे साथ इतने दिन

की संगत में भी मेरे उस स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं हो सका !' 'मैं किसी का दिल नहीं दुखाना चाहता ! सो भी नारी का। पुरुष प्यार करने के लिए बना है। उसे चाहिए वह हर एक से प्रेम और प्यार के साथ बोले ! मीठी चितवन से देखे ! जब तक उसके पास रहे उसे यही समझाता रहे कि वह उसी का है। मीठी बोली ! प्यार भरी चितवन ! आनन्द से सनी हुई हँसी— मनुष्य के लिए प्रभु की सबसे बड़ी देन है। और जब यह चीज़ हम औरों को देते हैं तो इसका किसी को घृणित अर्थ न करना चाहिए। इसका यह अर्थ तुम कदापि न लगाया करो कि मैं ऐसा व्यवहार करते-करते अपने हृदय का वह कोना भी किसी को दे बैठूंगा जिसमें तुम और केवल तुम्हीं बस चुकी हो ! क्या तुम्हें सन्देह है कि मैं जयश्री को छोड़कर वह कोना किसी और को दे दूंगा ?'

"ऐसा सन्देह जिस घड़ी उत्पन्न होकर पक्का हो जायगा, उस घड़ी तुम अपनी जयश्री को ढूंढ़े भी न पाओगे। पर तुम्हें भी मेरी इस कमज़ोरी का ख्याल रखना ही पड़ेगा !'

'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ! तुम मुझ पर विश्वास करो। कुछ संयोग भी ऐसा ही आ पड़ा है। कल से तुम मुझे मधूलिका या अन्य किसी युवती के साथ न देख सकोगी। कल मुझे यहाँ से चला जाना होगा।'

'चला जाना होगा !" उसने आहत होकर दुहराया। फिर बोली 'कितने दिन के लिए ?'

'कह नहीं सकता ! यह जीवन अपने बस में अब नहीं रहा। रहता तो शायद तुम्हें ही देकर निश्चिन्त हो जाता। तुम तो जानती ही हो ! हम सब आज कल जंगल में क्यों पड़े हैं ?'

'ओह !' कहती हुई वह लड़खड़ाती सी दीख पड़ी। तभी संग्राम ने संभाल लिया।

× × × ×

रूप और खड़ग चले आ रहे थे। दोनों एक दूसरे के बगल में थे। रूप ! खड़ग को अपनी आँखों में चुराती हुई चल रही थी और खड़ग रूप को अपनी ओर खींचता हुआ। तभी रूप ने कहा, 'उधर देखो !'

खड़ग ने देखा ! तब वह रूप की ओर देख कर बोला, 'कितना नीरव स्थान चुना है इन दोनों ने !'

'बस तुम्हें तो नीरवता ही चाहिए।' रूप ने शरारत से हँस कर कहा।

'केवल नीरवता नहीं रानी !'

'और कौन सी चीज़ ?'

'तुम !'

'ओह !' कहती हुई रूपकुमारी खड़गसेन का हाथ पकड़ कर बोली, 'एक बात पूछती हूँ बताओगे ?'

'पूछो !'

यह मधूलिका कौन है ? और किसकी है।

"किसकी है" से तुम्हारा मतलब।

"मेरा मतलब है कि यह किसी की पत्नी हो चुकी है या होने वाली है। सुना जब तुम घायल हो गए थे तो इसी के यहाँ तुम्हारी सेवा सश्रुषा हो रही थी !"

"झेंपते हुए" खड़ग ने कहा।

मधुलिका एक विधवा युवती है। पति गृह जाने के पूर्व विधवा हो जाने के कारण उसका दिल एक पुरुष साथी के लिए

सदा तड़पा करता है। अभागिनी नारी होते हुए भी अपना यह तड़पन लोगों को दिखलाती फिरती है!"

"ऐसा करना उसके लिए उचित है या अनुचित!"

"इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता। हाँ मैं इतना कह सकता हूँ कि उसकी इस कमजोरी को हम सभी जानते है।"

"और जानते हुए भी अपने इस शक्ति आश्रम में रखते हैं मुझे तो उसकी आँखों में जादू मालूम होता है। मैं सच कहती हूँ। यह जादू! हमारे दल के लिए कही साढ़े साती न साबित हो। कल की बात मालूम है तुम्हें?'

'नहीं तो!' खड्ग ने आश्चर्य से कहा।

'कल यह संग्राम को भुलावा देकर अपने साथ लिवा ले गई। अपनी झोपड़ी मे घंटों उसके साथ रही। उसका यह खेल देख कर जयश्री सारी रात रोती रही है!'

'अच्छा!'

तुम क्या जानो स्त्रियों के खेल? कल उसने संग्राम पर हाथ फेरा! और तुम उसके पुराने परिचित हो। कहीं तुम पर न हाथ फेर बैठे! कहे देती हूँ खड्ग! मैं जयश्री नही हूँ जो सह लूँगी! मै तो उसकी टाँग चार कर दो कर दूँगी ..दो! मुझे उसका इस आश्रम में रहना तनिक भी पसन्द नहीं! जो आये उसे ही अपने दल में भरती कर लेना। न पूछना! न जाँचना! सच कहती हूँ इसकी वजह से हम सब का मुँह काला न हो तभी कहना। तुम तो इसे अच्छी तरह जानते हो। मधुमत्त की यह कौन है? कहते हो पत्नी भी है और नहीं भी। यह क्या भेद है?'

खड्ग गम्भीर होकर चुप रह गया। पर रूप की बातों से उसे मानना ही पड़ा कि मधूलिका का वहाँ आना अच्छा नहीं

हुआ, पर साथ ही उसने यह भी अनुभव किया कि मधूलिका को अब अलग भी नहीं किया जा सकता।" तभी बातें करते-करते दोनों संग्राम और जयश्री के पास पहुँच गये।

"क्या है संग्राम, क्या जयश्री की तबियत अच्छी नहीं है?' ऐसा कहते रूप झपट कर जयश्री के पास पहुँची। रूप उसकी ओर देखती हुई बोली 'तुम धूल में क्यों बैठी थी। और तभी खड्ग की ओर देख कर बोली, 'देखो मेरा अन्दाज कैसा ठीक उतरा! मुझे मधूलिका की टाँगें चीरनी ही पड़ेंगी नहीं तो.........।"

संग्राम रूप की ओर देख कर बोला, 'वाहरी देवी! आग में घी न डालोगी तो क्या काम न चलेगा। अभी तो इस आग को शीतल करने में चार घंटे दे चुका हूँ; अब फिर तुम उसे दहकाना चाहती हो।'

रूप अपने चढ़े हुए चेहरे पर हँसी लाती बोली, 'बताओ न यह मधूलिका कौन है? तुम उसके साथ एकान्त में क्यों गये थे?'

जयश्री रूप के बगल में खड़ी थी। रूप जयश्री को हृदय से लगा उसके बाल सहलाती हुई संग्राम के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी।

"मधूलिका! काश वह यहाँ न आयी होती तो कितना अच्छा होता! पर वह आती क्यों न? मधुमत्त की परछाईं जो ठहरी। मधुमत्त के सारे यश, कीर्ति, विद्या, वृद्धि और नाम के लिए, 'लेकिन' स्वरूप यह मधूलिका यदि मधुमत्त के जीवन में न आयी होती तो मधुमत्त आज न जाने क्या होता।"

और एक ऐसी नारी के साथ तुमने उतनी देर तक एकान्त-वास किया?" जयश्री ने स्वर खींच कर कहा।

'लो संग्राम कहता ही था कि रूप आग में घी डाल रही है।

अरे भाई छोड़ो इस पचड़े को। अपने को जो काम करना है उसमें मधूलिका सी नारी का सहयोग प्राप्त होना क्या अनुचित है? रही यह कि हम सब उसके वासना-पाश में न फँसें, इसका प्रयत्न करना होगा। सो तुम दोनों चौकीदारी किया करना, और हम दोनों तुम्हारी गुप्तचरी करेंगे। हमें पकड़ पाना तो कान गरम करना। क्यों जयश्री रानी, सच कहता हूँ न? रूप तो तुमसे भी ज्यादा डर रही है कि कहीं मधूधिका मुझे उससे छीन न ले।'

जयश्री ने मन्द मुस्कराहट के साथ अपनी आँखें फेर लीं।

तब संग्राम के जी में जी आया। रूपकुमारी बोली, 'चलो बहन, मैं तुम्हारी और अपनी दोनों की निधि की रक्षा कर लूँगी। देखूँगी कि मधूलिका चुड़ैल हमारा-तुम्हारा क्या बिगाड़ती है।'

तब चारों चल पड़े। झोपड़ी के पास पहुँचते-पहुँचते उधर से मधुमत्त और मधलिका भी आ पहुँचे। साथ में काश्यप भी था। मधूलिका काश्यप से हँस-हँस कर बातें कर रही थी।

रूप बोली, 'मधुलिका तो जैसे मानो तितली है तितली! एक से उसका जी ही नहीं भरता। अब बेचारे काश्यप पर जा पड़ी। भला मधुमत्त ही क्या बुरा है! काश्यप अभी तो कल का लड़का है!'

तभी सरदार ने जोर से पुकारा, 'मधूलिका।"

महन्थ किस कोने से आ गये? उन्होंने मधूलिका को ही क्यों पुकारा? उनके पुकारने का अभिप्राय क्या है? आदि बातें सोचते-सोचते लोग सरदार के पीछे उनके झोपड़े में घुस गये।

दूसरे दिन महन्थ की आकृति सदा की भाँति शान्त न थी। उनका चेहरा कुछ खिंचा हुआ दीख रहा था। वे कुछ कहना

चाहते थे, पर उनकी आकृति देख कर जान पड़ता था, मानो वे कहने में हिचक रहे हों।

महन्थ को लोगों ने सदा हँसते पाया था। आज उनकी विषाद भरी आकृति देख कर लोग एक अज्ञात आशंका से हिल उठे। महन्थ ने जब आँख उठाकर सामने बैठे लोगों की ओर देखा तो उन्हें यह समझने में तनिक भी देर न लगी कि उनकी चिन्ता ने सब को विचलित कर रखा है। तभी वे अपनी सहज गम्भीरता के साथ बोले, 'साथियो आज हमारे सामने एक घरेलू समस्या उपस्थित है। उस समस्या का सुलझाना मैं आवश्यक समझता हूँ।'

दयालदास बोल उठे, "घरेलू समस्याएँ तो सदा साथ रहेंगी, उन्हें कब कौन पूर्ण रीति से सुलझा सका है। इन झंझटों में पड़ कर उस बड़ी समस्या को न भूलना चाहिये जिसे सुलझाने के लिए हम यहाँ बनवास कर रहे हैं।"

महन्थ बोले, 'तुम ठीक कहते हो दयालदास। पर मेरा मत, इस तरह की धारणा से सदा अलग रहा है। मैं छोटी-छोटी समस्याओं को उतना ही महत्व देता हूँ जितना बड़ी समस्याओं को। मान लो, एक घर में दस प्राणी हैं। उनमें से तीन ऐसे हैं, जो लड़ाकू हैं! उनकी किसी से बनती नहीं। उन पर किसी की प्रतीत नहीं। फिर सोचो, यदि उनकी वैमनस्यता को दूर किये बिना उनसे कहा जाय कि तुम्हें अपने घर पर हमला करने वालों के मुकाबिला के लिये तैयार रहना होगा, तो क्या यह कभी सम्भव है कि वे अपने भेदभाव को भूल कर एक हो जायँगे।'

"होना तो चाहिए", खड़ग ने ऊँचे स्वर में कहा।

'पर होते नहीं' महन्थ ने गिरते हुए स्वर में कहा।

"ऐसा क्यों नहीं होता है दद्दा ?" जयश्री कोमल स्वर में बोली। तभी सब लोगों के कान उसकी ओर उठ गये पर वह आगे न बोलकर चुप रही !

"इसलिए नहीं होता बेटी, कि लोग अपने-अपने स्वार्थ को आगे बढ़ा देते हैं। अपनी लाभ और हानि को इतना अधिक महत्व दे बैठते हैं कि उन्हें सार्वजनिक हित के बनने बिगड़ने का कोई ज्ञान ही नहीं रह जाता। उनका निजी स्वार्थ, पूरा होने पर भी टिकाऊ नहीं होता है। वे यह भी नहीं सोच पाते कि कारण क्या है। यदि ऐसा न होता तो आज इन्दु गुलाम नहीं होता। आज मौनसों को इतने अधिक समर्थक नहीं मिल पाते। किस-किस को गिनाऊँ। शिवनगर के जमींदार शङ्करशरण को ले लो। उसे किस बात की कमी थी ! कम से कम वह तो कन्दर्प नारायण का साथ देता। वे एक चने के दो दाल के समान ही हैं। पर नहीं, वे मौनसों के दाहने हाथ हो रहे हैं। रेवानन्द की तो हम सराहना कर सकते हैं। कारण वह खुल्लमखुल्ला राष्ट्रद्रोही बन बैठा है ! ऐसों से तो हम सतर्क भी रह सकते हैं पर शिवनगर और कजरारी के इलाकेदार त्रिपुरारी शरण और श्यामाहरी जो आस्तीन के साँप हो रहे हैं उनसे हम कैसे सतर्क रहें। वे दबी जीभ से कन्दर्पनारायण के पक्ष की भी कभी कभी कह देते हैं। पर उनके कामों को देखो तो दाँत तले उँगली दबानी पड़ती है। ये इतने पतित क्यों हैं ? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि इन्हें स्वाथ सूझ रहा है और ये उसी स्वार्थ को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। पर मैं उन्हें सावधान किये देता हूँ कि मौनस उनके साथ भी वही व्यवहार करेंगे जैसा व्यवहार मुहम्मद गोरी ने अनंगपाल के दूसरे नाती के साथ किया था। खैर ! ये बातें तो आज मैं कहना भी नहीं चाहता था। यों ही प्रसंग बस कह

गया। आज तो मुझे अपने ही घर की एक समस्या परेशान कर रही है!"

"वह कौन सी!" कश्यप ने विनीत स्वर में कहा।

"उसका सम्बन्ध तुम लोगों से है।"

"हम लोगों से" रूपकुमारी ने कुछ गम्भीर होकर दुहराया। जयश्री बेचैन हो उठी। मधूलिका की आकृति में घबराहट छा गयी। कृष्णा इधर उधर देखने लगी! मधुमत्त को पसीना हो आया। खड्ग, दयालदास की पीठ का पर्दा बना कर जमीन खोदने लगा। काश्यप तो महन्थ के बन्द हुए ओठों को बेचैन हो निरखने लगा और दयालदास की आँखों में निराशा के भाव छा उठे!

संग्राम तभी आवेश में बोला 'महन्त की परेशानी का कारण मैं समझ गया! उनकी बढ़ती हुई चिन्ता का कारण हमारी उच्छृंखलता है! हमें अपने को काबू में रखना होगा। आगे के लिए हमारा प्रस्ताव हैं कि आश्रम दो भागों में विभक्त कर दिया जाय। युवक और युवतियाँ अलग-अलग रहें। इस बारे में मैं महन्थ की कड़ी से कड़ी आज्ञा के सामने सिर झुकाने और अपने पूर्व के किसी अपराध के लिए मैं क्षमा मागने को तैयार हूँ।'

"मेरा यह मतलब नहीं, बेटा! मैं तुममें से किसी के चरित्र पर सन्देह नहीं करता! तुम मेरी भावनाओं का अनर्थ न करो। नर और नारी के सम्बन्ध में मेरे विचार बिल्कुल दूसरे है।"

'यह केवल कोरी कल्पना नहीं वरन् एक सनातन सत्य है। दो-एक देवताओं को छोड़ कर कोई भी ऐसा बड़ा या छोटा देवता हमारे यहाँ नहीं है जो बिना जोड़ो के हो। शिव अर्द्ध

नारीश्वर ही कहलाते हैं। भगवान् शङ्कर का एक भक्त तो उनको स्मरण करते हुये कहता है :—

मन्दारमाला कुलितालकाय कपालमालाङ्कित शेखराय।
दिव्याम्बराय च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय !

इस श्लोक में पुजारी भगवान् शङ्कर को नर एवम् नारी दोनों रूप में स्मरण कर अपना नमस्कार पेश करता है। नर और नारी का ऐसा सुन्दर संयोग भगवान् शङ्कर में ही देखा जाता है—

पर संसारी जीव ऐसे शक्ति शाली नहीं हैं कि नर और नारी दोनों रूप में हों। अस्तु आवश्यकता इस बात की होती है कि वे अपने लिए उपयुक्त साथी चुनें। इसी साथी चुनने की क्रिया को प्रेम-लीला या प्रणय-लीला कहा जाता है। जीवन का सच्चा आनन्द, विशेष कर जवानी का, प्रणयी बनने में ही है। ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्याध्ययन करना, जिस प्रकार ब्रह्मचारी का चरम लक्ष्य होता है, वृद्धावस्था में धर्म-ज्ञान एवम् प्रभु-पद में प्रेम जैसे उत्कट हो उठता है उसी तरह गृहस्थावस्था की देहरी पर पैर रखते ही जिसके दिल में यदि एक साथी की चाह न उठी वह सफल और पूर्ण मानव नहीं।

पर साथी चुनने में आरम्भ की जरा सी भूल से सारा जीवन बन और बिगड़ सकता है। अस्तु, चैतन्य, एवम् कुशाग्र बन कर इस ओर कदम बढ़ाना चाहिये।"

प्रणय-लीला आनन्द एवम् दुःख दोनों का कारण बन सकती है। यदि प्रणयी सफल हो गया तो ठीक ही है; अन्यथा इसके कारण उस पर जो भी कष्ट न आये वही थोड़ा है। यदि एक ही प्रेमिका के कई एक प्रणयी हुए, तो परस्पर स्पर्धा में खून एवम् हत्या तक

की नौबत आ जाती है ! मैं यह बात इस आश्रम में नहीं देखना चाहता ।'

"मैंने यह इसलिए कहा था कि तुम लोगों को घूमने फिरने एकान्त में रहने के संयोग मिलता रहा है । सम्भव है तुम लोग भी प्रणयी बनने का स्वाँग रचते हो । पर स्मरण रखना कि अधिकाँश प्रणय-लीलाएँ असफल एवम् वासनामूलक होती हैं ।"

"बात कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि प्रणय-लीला के विरुद्ध हम चाहे जो न कहें वेद, शास्त्र के प्रमाण दें, बड़े-बूढ़ों का डर दिखायें; गुरुजनों का उपदेश सुनायें, पर प्रणय-लीलाएँ चलती ही रहेंगी । क्योंकि प्राणी-मात्र का गुण प्रेम है । जड़ चेतन सभी इस रोग के शिकार हैं । लता, वृक्ष से क्यों आलिङ्गन करती है ? बादल जल-राशि पर क्यों अधिक बरसते है ? मयूरी, मोर का नृत्य देख क्यों प्रभावित होती है ? सुन्दरियाँ सुन्दर युवकों को देख क्यों आकर्षित हो उठती है ? युवक युवती की ओर देख कर क्यों मतवाला हो जाते हैं ? प्राणी-मात्र का स्वभाव ही स्रष्टाने ऐसा रचा है । इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता । हाँ सुधार कर सकता है—

कुछ लोगो का ख्याल हो सकता है कि जब युवक एवम् युवती परस्पर देख, सुन तथा साथ-साथ रह कर एक दूसरे के बन्धन में बँधते है तो उनके बन्धन का कारण प्रेम होता है । पर प्रेम कोई ऐसी वस्तु नहीं जो एकाएक उत्पन्न हो । इसके उपजने में समय लगता है, और दृढ़ होने में वर्षों की अवधि । कभी-कभी वर्षों तक प्रेम उत्पन्न नहीं होता । वर्षों जोड़े साथ रहते हैं, साथ खाते हैं, उठते-बैठते हैं, फिर भी एक दूसरे को हृदय से प्यार नहीं करते । कहने का मतलब यह है कि जोड़े जो आपस में एक दूसरे से आकर्षित होते हैं वह प्रेम के कारण नहीं, वरन् वासना

के कारण। यह एक कटु सत्य है जिसे अधिकाँश लोग स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। प्रेम हृदय की परख करने से होता है और हृदय की परख यों तो एक क्षण में भी हो सकती है; पर साधारणतया हृदय की परख करने में सारा जीवन बीत जाता है। होता यह है कि युवक एवम् युवती एक दूसरे के बाह्य रूप को देख कर ही आकर्षित हो उठते हैं एक दूसरे की ओर चुम्बक की तरह अपनी ओर खींचने लगते हैं। इसी चुम्बक का नाम 'वासना' है। इसलिए अन्य देशों में सैकड़ों जोड़े, जोड़ी चुनने के मार्ग में ही एक दूसरे का साथ छोड़ बैठते हैं, उनकी वासना मार्ग में ही बुझ जाती है। फल यह होता है कि वे उस पवित्र बन्धन में बँध कर रहने के सुख से वंचित रह जाते है जिसमें बँधे कर वे दोनों प्रेम मार्ग पर युगल साथी बन कर सकते थे।"

"सच्चा प्रेमी बनने के पहले प्रेम और वासना को समझ लेना चाहिये। खेद है कि निन्नानवे प्रतिशत युवक एवम् युवतियाँ इस भेद को समझने की कोशिश नहीं करते। बहुतों को तो संयोग ही नहीं मिलता और जिन्हें मिलता भी है, वे ग़लत तरीक़े से समझने को चेष्टा में ग़लत राह पर चले जाते हैं।"

"मैं चाहता हूँ कि तुम लोग एक दूसरे को खूब प्यार करो और सदा साथ रहो। मैं स्वयम् तुम्हें एक दूसरे को प्यार करने का मौका देता रहता हूँ और देता रहूँगा। पर स्मरण रखो, प्रेम और वासना दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरे आश्रम में प्रेम की धारा तो बहे पर उस धारा में वासना की कगारें टूट कर न गिरें। मै समझता हूँ मुझे अब अधिक स्पष्ट कहने की आवश्यकता नहीं है!'

महन्थ का भाषण समाप्त होने पर सब लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे! किसी को कुछ कहने का साहस न हुआ। तभी

संग्राम उठ कर बोलने लगा। 'आप लोगों ने उपदेश सुन लिया! उसके भीतर ऐसी कोई बात नहीं थी जिसे हम समझ न पाये हों। जीवन में सतप्रेम होना ही चाहिए। इसे भला कौन अस्वीकार कर सकता है! अब हमें अपने निजी स्वार्थ को भूल कर उस महान् स्वार्थ की पूर्ति के लिए बढ़ना है जिसके लिये हम आप व्रत लिए बैठे हैं। देश वालों की आँखें हम पर लगी हैं। देश के शासक न जाने कहाँ और किस अवस्था में है! जहाँ और जिस भी अवस्था में हों, वे सोच रहे होंगे कि हम उन्हें वापस ले आने का उपाय कर रहें होंगे। आप से कहना है कि अब आप हम आगे का कार्यक्रम तैयार करें महन्थजी हमारी भूलों को क्षमा करें! मैं अपने साथियों की ओर से सब के लिए क्षमा माँगता हूँ और सब की ओर से प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब हम भूल न करेंगे!" ऐसा कहते हुए संग्राम ने लोगों की ओर देखा तभी सब लोग एक स्वर में बोल उठे 'हम संग्राम की बातों का समर्थन करते हैं।"

दयालदास के चेहरे पर जवानी छा गयी। महन्थ की आँखें सिक्त हो उठीं। वे गदगद् स्वर में बोल, उठे।

"मातृभूमि की जय।"

आश्रम वासियों ने भी एक साथ दुहराया "मातृ भूमि की जय"! उस जय-घोष से सारा जंगल गूँज उठा। साल के ऊँचे-ऊँचे गाछ, हिल उठे। वायु में एक भारी प्रकम्पन हो आया। सारी प्रकृति और सारा वतावरण जैसे मानों मातृभूमि का जय-जय नाद करने लगा।

"दयालदास!"

"हाँ महन्थ।"

"हम कुल पन्द्रह हैं। तुम्हारा काम है इन सब के शरीर को लोहा सरीखा दृढ़ बना देना। मैं चाहता हूँ कि इनके ढीले-ढाले शरीर फौलाद सरीखे हो जायँ। इनकी रानें ऐसी दृढ़ हो जायँ कि उन पर जब गोलियाँ पड़ें तो उछल उठें या टूट जाँय। इनकी एक-एक माँस पेशियाँ और माँस ग्रन्थियाँ अपना अलग-अलग अस्तित्व दिखायें। ये बन्दरों की तरह वृक्षों पर कूद चढ़ सकें, हाथियो की तरह पेड़ों को जड़ से हिला सकें। चार चार मनुष्यी को अपनी कुक्षों में भर कर ये दौड़ सकें।"

"ऐसा ही होगा। पर इसके लिए कम से कम तीन माह का समय चाहिये हो!"

"इतना समय तुम्हें दिया जाता है! तीन महीना क्या यदि तीन साल में भी हम स्वशासन को वापिस ले सकें तो समझो हमने बड़ी शीघ्रता की! तुम इन्हें तैयार करो। इस बीच मैं अज्ञातवास पर जाऊँगा। तीन महीने तक तुम मेरी राह देखना! न लौटूँ तो पन्द्रह दिन तक और राह देखना! फिर भी न लौट सकूँ या खबर दूँ तो समझना मैं उलझन में फँस गया हूँ।"

× × × ×

महन्थ की अनुपस्थिति आश्रमवासियों को खल सी उठी। वे इस आश्रम के प्राण थे। उनके रहते हुए आश्रम के लोग अपने को सुरक्षित समझते थे। अस्तु दूसरे दिन आश्रम में एक अजीब उदासी थी। जयश्री बोली, न जाने क्यों मेरा किमी काम में नहीं लग रहा है! प्रायः सभी ने जयश्री की इस बात का समर्थन किया। दयालदास ने भी महन्थ की अनुपस्थिति का अनुभव किया, पर उन्होंने अपने पर जो उत्तरदायित्व ले लिया था, उसे तो उन्हें निबाहना ही था। अतः, वे सब को सुना के बोले, तुम लोग तैयार होकर आ जाओ। आज हम झील में

स्नान करने चलेंगे। कल से तुम लोगों को वहीं नित्य स्नान करना होगा। जो लोग तैरना नहीं जानते उन्हें तैरना सिखाया जायगा।

तैरने और झील में स्नान करने की बात सुन, सभी के मन में एक नई बात पैदा होगई। और वे लोग तैयार होने लगे। लगभग एक घड़ी के भीतर तैयार कर दयालदास सब को लिए हुए झील की ओर चल पड़े।

आश्रम से यह झील चार पाँच मील दूर पड़ती थी। पर रास्ता सुनसान था। जंगलों के बीच। हरे भरे वृक्षों से घिरी जल के समीप होने के नाते झील के पास के वृक्ष बारहों महीने हरे भरे रहते थे। उस हरियाली के बीच, श्वेत जल से भरी झील आकाश में चन्द्र मण्डल की तरह दिख रही थी। न बहुत गहरी न बहुत छिछली। झील में पचीसों अन्तरीप बन गए थे। उन अन्तरीपों के बीच के प्रायद्वीपों पर झुरमुट की तरह एक वृक्ष दूसरे से गुँथे हुए एक अनूठी छटा दिखा रहे थे। झील के किनारे पहुँचते ही, सब के मन में एक नयी स्फूर्ति जाग उठी और सब लोग झमाझम झील में कूद पड़े। जिन्हें तैरना आता था, वे दूर निकल गए। जो तैरना न जानते किनारे खड़े खड़े स्नान करने लगे।

इस तरह दयालदास उन्हें नित्य प्रति एक न एक नयी बातें सिखाते तथा स्थान दिखाते। महन्थ ने उनकी शारीरिक उन्नति के लिए जितना कार्यक्रम बता दिया था, दयालदास उसे मनोयोग से मान रहे थे।

महन्थ की उस दिन की चेतावनी का असर प्रायः सभी आश्रम वालियों पर हो गया था। मधूलिका ही एक ऐसी व्यक्ति थी जो आश्रम के अनुशासन के प्रति वफादार न रह चुकी। दयालदास के लिए मधूलिका और मधमत्त एक बिकट पहेली बन

गयीं। वैसे आश्रम का जीवन पूर्णतया शान्ति था। प्रायः सभी लोगों का विचार था कि मधूलिका को हटा दिया जाय, पर आश्रम इतनी दूर था कि अकेली मधूलिका को निकाल देना मनुष्यता के बीपरीत बात होती। मधुमत्त का हटाना उचित न था। अपने दल की संख्या घटाना भी उन्हें स्वीकार न था।

अस्तु दयालदास का विचार हुआ कि मधूलिका और मधुमत्त का नाजायज सम्बन्ध जायज घोषित कर दिया जाय। पर जब यही प्रस्ताव मधूलिका के सामने उपस्थित किया गया तो उसने अस्वीकार कर दिया।

दयालदास ने पूछा, 'मधूलिका तुम प्रकट रूप से अपने को मधुमत्त की पत्नी क्यों नहीं घोषित कर देती।'

मधूलिका बोली, 'मुझे किसी के बन्धन में बँध कर नहीं रहना है।'

'क्यों ? तुम तो मधमत्त को बहुत चाहती हो। तुम्हारे वे पत्र जो तुमने विलासगृह से लिखे थे, इस बात के प्रमाण है कि तुम मधुमत्त के बन्धन को चाहती हो।'

'यह उस समय की बात थी। यदि उस समय मधुमत्त तैयार हो गया होता तो संभवतः मैं वैसा ही करती जैसा आप कहते हैं, पर आज की स्थिति भिन्न है। मैं मधुमत्त से केवल मैत्री सम्बन्ध रखती हूँ।'

'पर नारी के लिए, किसी पुरुष से इस रूप में मैत्री रखना समाज को पसन्द नहीं मधूलिका।'

'नारी न कहिए—मधूलिका कहिए। यह कहिए कि मधूलिका को यह हक नहीं है कि वह पुरुषों से मैत्री सम्बन्ध करें। यदि

करें तो उसके पैरों की जूती बन करे, यह मुझे कभी स्वीकार नहीं। मैं अपना जीवन इसी रूप में बिताना चाहती हूँ।'

जानती हो दुनिया क्या कहेगी।'

'जानती हूँ, दुनिया मुझे पतिता कहेगी।'

'यह जानते हुए भी तुम इस तरह की बातें करती हो।'

'दद्दा, आप इस प्रसंग को न उठावें। मैं मधूलिका के विचार और उनके आधार को समझता हूँ। आप विश्वास रखिए, मधूलिका कोई ऐसा कार्य न करेगी जिससे हमारे ध्येय को धक्का लगे' संग्राल ने कहा।

सहानुभूति के दो शब्द सुन मधूलिका फफक पड़ी। आँसू पोछती हुई बोली, 'आप सब सुन लें। यह न समझें मैं आवेश में हूँ इसलिए मेरी बातें अवहेलना के योग्य हैं। आप सब जानते हैं कि मैं बाल विधवा हूँ! तेरह वर्ष की आयु में मैं विधवा हुई थी। आज मैं तीस वर्ष की हूँ। बीस वर्ष वैधव्य के मैंने बिताये। इस बीस वर्ष के जीवन में मैं कम से कम सौ ऐसे पुरुषों को गिना सकती हूँ जिन्हें मैं प्राण पण से चाहने लगी थी और यह चाहती थी कि उनमें से कोई साहस कर मुझे अपनाने के लिए आगे बढ़े। पर सभी ने मेरे साथ बनावटी व्यवहार किया। सभी ने मेरे साथ प्रेम का सौदा करने का दम भरा, सभी ने मेरे एक एक अङ्ग पर रीझ उठने का स्वाँग रचा। पर आप जानते हैं उसका अन्तिम परिणाम क्या हुआ! सब ने मुझे अपने लिए खिलौना समझा। जब तक उनके जी में आया वे खेलते रहे जब खेलते-खेलते उनके मन भर उठे, वे मुझे सोती छोड़ कर चले गए। और आज मैं अकेली हूँ। आप मुझे दोष देते हैं कि मेरा जीवन कलुषित है। इसका दोष केवल मुझे नहीं बल्कि, सारे वातावरण को है। मैं समाज को नहीं कोसती। कारण

समाज कोई एक प्राणी या व्यक्ति नहीं है, वह अनेक व्यक्तियों का समूह है। मैं सच कहती हूँ मैं किसी से घृणा नहीं करती। और घृणा करूँ भी क्यों! आप ही सब मुझसे घृणा करते हैं। मैं उसका कारण जानती हूँ। पर आप विश्वास रखें कि मैं आपमें से किसी को हानि न पहुँचाऊँगी। मैं आप लोगों के दल में केवल देश सेवा की भावना से सम्मिलित हुई हूँ। मेरा ख्याल है कि पापी और पूण्यात्मा सभी को अपने देश की सेवा करने का समान अधिकार है। इस समय देश सेवा हमारे सामने सब से बड़ा प्रश्न है हमें उसे ही हल करना चाहिए। मेरे व्यक्तिगत प्रश्न जैसे छोटे मोटे प्रश्नों को सुलझाने को महत्व देकर आप सब उस बड़े प्रश्न को खटाई में न डालें।'

मधूलिका की बातें सुन कर सब लोग भौचके हो उसकी ओर देखने लगे। तभी मधुमत्त खड़ा होकर कहना आरम्भ किया।

'मैं इस विषय पर मैं लगातार चुप रहा। मेरे और मधूलिका के सम्बन्ध को लेकर जो चर्चा यहाँ और अन्यत्र चल रही थी उसे मैं न जानता रहा होऊँ सो बात नहीं है, पर जान बूझ कर भी मैं चुप रहा आया मधूलिका की ही तरह मैं भी समझता हूँ कि इस तरह के गलत या सही काम करते हुए भी हम जिस लक्ष के पीछे आज हम फकीर बने हैं उसमें इतनी तो शक्ति है ही कि वह हमारे इन छोटे मोटे अपराधों को आत्मवत करता रहे। आप सब इस तरह की बातों को महत्व देना चाहें तो दें, पर मैं तो इसे बिल्कुल ही महत्व नहीं देता। आज अमुक युवक अमुक युवती से प्रेम करता है, कल अमुक से, इसकी ओर मैं तनिक भी ध्यान नहीं देना चाहता। ये सब निजी मामले हैं, इन्हें आश्रम का मामला बनाने के माने हैं कि हम इन्हीं में उलझ कर मर जाना चाहते हैं।''

'तुम सच कहते हो भाई, मेरा भी ऐसा ही विचार है मनुष्य जीवन में ये सब बातें साथ साथ चलती हैं चलेगी, और चलते हैं। अर्जुन इन्द्र से अस्त्र माँगने गये थे वहाँ उर्वशी ने उनसे प्रणय करना चाहा। राम जंगलों में घूम रहे थे, वहाँ रावण की बहिन उनसे प्रेम,करने पहुँच गई। दशरथ युद्ध करने गए थे, केकई ने उन्हें वहाँ भी न छोड़ा। मैं तो इसे 'जीवन की एक आवश्यकता' समझता हूँ। और आपकी तरह इसे बिल्कुल निजी बात समझता हूँ। आपका या मधूलिका जो लोग बदनामी करते होंगे, वे हमारे वास्तविक शत्रु ही होंगे। मित्र नहीं। पर, इस आश्रम के किसी भी व्यक्ति ने आप लोगों के बारे में कुछ कहा होगा तो इसलिए नहीं कि वे आपकी निन्दा करना चाहते हैं, वरन इसलिए कि आश्रम के जीवन का स्रोत दूसरी ओर न बह पाये। अब मैं आप सब लोगों से अनुरोध करूँगा ऐसी किसी बातों पर आप पुनः ध्यान न दें।'

दयालदास ने साँस खींच कर कहा, 'ऐसा ही होगा।'

"कुछ भी हो अब तो तुम्हारी तीन महीने की अवधि समाप्त हो गयी!" संग्राम ने कहा।

'बेटा अब अधिक विलम्ब न होगा। हमें जो कुछ करना है, अब उसे शीघ्र ही कर डालेंगे। हमने कन्दर्प की राह काफी देर तक देख ली। यदि वे हमें आगे बढ़ा कर, आप पीछे हटना चाहते हैं तो हट जायें, पर हम जो अब अपना अगला कदम उठा चुके हैं, तो पीछे हटने को नहीं। हमने तीन महीने का समय तैयारी करने के लिए दिया था, वह आज पूरा हो गया। यह प्रसन्नता की बात है कि तुम लोग यहाँ इकट्ठे हो। सुनो राजधानी के पूरबी हिस्से में टूटा हुआ जो दुमंजिला मकान है, वही हम लोगों का अड्डा रहेगा। सारी चीजें वहीं इकट्ठा की गई हैं।

समय पड़ने पर उनका इस्तेमाल होगा। आज हमें जो कुछ करना है, उसे मैं बाद को बताऊँगा। पर मैं अब मौके पर ही मिल सकूँगा" महन्थ ने गम्भीर होकर कहा।

सब लोग चुपचाप उनकी बातें सुनते रहे। जब वे उठकर जाने लगे तब सब ने उनका पैर स्पर्श किया।

इस वार्तालाप के लगभग तीन दिन बाद राजधानी की प्रमुख सड़क पर जिस समय नागरिकों ने बाजे गाजे के साथ एक भारी बारात निकलते देखी तो सब के सब कौतूहल में आ गये। बे-सहालग की उस बारात को देखने के लिए लोग उमड़ पड़े। महन्थ ने जो कुछ सोचा था, वही हुआ। जिस सड़क से होकर बारात निकली थी, उस सड़क पर तमाशबीनों के मारे तिल रखने की भी जगह नहीं रह गयी। उस समय राजधानी की चहल-पहल देखते ही बनती थी। लगता था, मानो राजधानी का सारा जीवन उस बारात के रूप में परिवर्तित हो किसी ओर को बढ़ा चला जा रहा है।

नगर-निवासी उस बारात के सम्बन्ध में तरह तरह के अटकल लगा रहे थे। जिसकी जो समझ में आ रहा था, अपने आस-पास के लोगों को सुना रहा था। जितने मुँह उतनी ही बातें हो रही थीं। हजारों तरह के ख्याल लोगों के दिल में पैदा हो रहे थे। बिना जाने-बूझे दर्शकों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। उधर जिस सड़क से होकर वह अनूठी बारात चली जा रही थी उस सड़क पर भीड़ की तो कुछ पूछिये मत। सभी बाराती जैसे दीख रहे थे।

धीरे धीरे बारात राजधानी के केन्द्र में पहुँच गई। नगर का सब से बड़ा हार्ट चौक कहलाता था। चौक के बीचोबीच एक बहुत बड़ा मैदान था। मैदान के चारों ओर दूकानें, दूकानों

के सामने बढ़िया बने राजपथ सोह रहे थे। चौक का मैदान इतना बड़ा था कि उसमें कम से कम एक समय में करीब एक लाख आदमी समा सकते थे। उस चौक में भीड़ का इस समय कुछ हिसाब न था।

चौक से राजमहल, जहाँ राज्य के बड़े-बड़े कार्यालय थे, पश्छिम की सीध में लगभग मील भर दूर पड़ता था। मील भर चलने के बाद राजमहल के सामने का मैदान आता था। मैदान गोल बना था। उसके चारों ओर वृत्ताकार सड़क घूमी हुई थी। सड़क के दोनों ओर हरे भरे अशोक के वृक्ष आकाश से बातें कर रहे थे। उस गोल मैदान के बीच एक स्तम्भ था। स्तम्भ के नीचे संगमरमर की एक चौकी थी। इतिहासकारों का कहना है उस स्तम्भ का निर्माण चार सौ बरस पूर्व, इन्दु देश वासियों द्वारा म्लेच्छों पर विजय प्राप्ति की खुशी में हुआ था। तब से यह नियम हो गया था कि महत्वपूर्ण घोषणायें उसी विजय स्तंभ के पास बने चबूतरे पर चढ़ कर की जातीं थीं।

राजधानी का वह चबूतरा केवल इन्दु देश के लिए ही नहीं वरन् और देशों के लिए एक राजनीतिक मंच हो गया था। अनेक बार उस चबूतरे से ऐसी-ऐसी घोषणाएँ की गईं जिनका सारे संसार की राजनीति पर असर पड़ा। आज यह अनूठी बारात अपने पीछे सहस्रों की संख्या में भीड़ लिये उस चबूतरे की ओर बढ़ती चली जा रही थी। किसी ने जनता से वैसा करने को कहा नहीं, बल्कि जनता स्वयम् इस विश्वास के अनुसार कि चबूतरे से आज कोई न कोई घोषणा होगी, उसी ओर बढ़ रही थी। नेता नाम की कोई वस्तु वहाँ नहीं थी। भीड़ स्वयम् अपना नेतृत्व कर रही थी।

जिस समय इतनी बड़ी भीड़ के बढ़ने का समाचार मौनसों

को मिला उनके हाथ पैर ढीले हो गये। फिर भी वे विचलित नहीं हुए। ठीक उसी समय इन्दु देश के धारा सभाइयों का झुंड उनके दरबार में उपस्थित हुआ। उनका स्वागत करते हुए मौनसों के प्रतिनिधियों ने कहा—बताइये, अब क्या किया जाय?

"इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं पथरकला के प्रयोग से लोगों का दिमाग रास्ते पर आ जायगा" एक सरदार ने कहा।

प्रतिनिधि भीतर ही भीतर सोचने लगा, "ये इतने पतित हो गये है कि स्वयम् अपने भाइयां पर पथरकला चलवाना चाहते हैं। तब तो एक महन्थ कृपाराम नहीं बल्कि सैकड़ों वैसे मौनसों का कुछ नहीं बिगाड़ सकते।" तभी वह प्रकट हो कर बोला "आप ठीक कहते हैं। पर प्रश्न यह है कि यदि भीड़ बेकाबू हो गई तो?"

"आप का ख्याल बिल्कुल उलटा है जहाँ तीन-चार हमला हुआ नहीं कि भीड़ तो दीख भी न पड़ेगी। कुल पन्द्रह तो उनके आदमी हैं। उनमें पाँच स्त्रियाँ हैं और दस पुरुष"।

"यह आपको कैसे मालूम हुआ?"

"हमारा एक आदमी उनका पीछा कर रहा था। नगरकोट की धमशाला में जिस समय उनकी मन्त्रणा हो रही थी, वहाँ मेरा आदमी मौजूद था।"

"मेरा तो ख्याल है अन्य आदमी तो क्या, स्वयम् रेवानन्द ही मौजूद थे", एक दूसरे सदस्य ने कहा।

रेवानन्द अपनी मुस्तैदी और सुरागरसी की तारीफ़ सुन कर खिल उठे। तभी प्रतिनिधि फिर बोला। "शाबास रेवानन्द जी, शाबास। आप सा भेदिया तो सोने के पींजड़े में रखने के काबिल है। और यह तो बताइये कि यदि महन्थ दल से राज-भक्त दल आ मिला तो!"

"वह न मिल सकेगा। मैंने ऐसी चाल चल दी है कि राजभक्त महन्थ के दल से अप्रसन्न हो गये हैं। सहायता देने या मिलने की बात तो दूर रही, वे उलटे अब यह कहने लगे हैं कि महन्थ को अपनी योजना बन्द कर देनी चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि जनता में महन्थ और संग्राम के विषय में यह भी बात उड़ा दी गई है कि उन्होंने जो धन इन्दु देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के नाम पर बटोरा था उसे खा गये!"

"खूब-खूब। यह अच्छा ही हुआ। पर यह भीड़ जो राजमहल की ओर चली आ रही है इसका क्या होगा?"

"उसके लिए घुड़ सावारों को बुलवा लिया जाय।"

"ऐसा ही करना होगा।" और जिस समय राजमहल के भीतर यह मन्त्रणा चल रही थी, नगर में जोरों से चर्चा फैल गई कि आज नगर पर महन्थ-दल का हमला हो गया है। यह भी खबर फैल गई कि संग्राम के साथ कई सौ सशस्त्र युवक हैं। इस चर्चा से सारा शहर आतंकमय हो उठा। दुकानदारों ने दुकानें बन्द कर दीं। कारोबार रोक दिये गये। धनिकों को अपने धन और जानमाल की मोह सताने लगी। उधर भीड़ चौक में जमा होने लगी।

ठीक उसी समय एक सुरक्षित स्थान में खड़े संग्राम और महन्थ में बातचीत चल रही थी। संग्राम बोला 'अब तो हमें चबूतरे पर आधिपत्य जमा ही लेना चाहिए। यदि आज्ञा हो तो मैं चबूतरे पर चढ़ जाऊँ और आज इन्दु देश की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दूँ।"

"तुम जानते हो इसका क्या परिणाम होगा?"

संग्राम मौन था। महन्थ बोले "परिणाम यह होगा कि भीड़

पर गोली चला दी जायगी। जहाँ दो-चार व्यक्ति मरे नहीं कि सारी भीड़ भाग खड़ी होगी।"

"तब ?"

महन्थ ने संग्राम के कान में धीरे से कुछ कहा। संग्राम ने हताश हो पूछा, "पर यह काम कैसे होगा ?"

"हो जायगा। तुम अपना दल सँभालो।"

संग्राम ज्यों ही, आदेश सुन पीछे की ओर मुड़ा दो व्यक्ति जो पास ही थे, इस तरह खिसके मानो वे उनकी बातें सुनने के लिए वहाँ छिप कर खड़े रहे हों।

संग्राम उनके पीछे पड़ना ही चाहता था कि कुछ दूसके लोगों ने उन्हें पकड़ कर फुर्ती से भीड़ से बाहर घसीट ले गये। संग्राम ने धीरे से कहा, शाबाश !

नगर में तो यह चर्चा फैल ही गई थी कि इन्दु देश पर धावा करने की, बारात एक योजना मात्र है। इस चर्चा का फल यह हुआ कि जो भय और आतंक के कारण इन्दु देश की स्वतन्त्रता की आयोजना में किसी तरह का सक्रिय भाग नहीं ले रहे थे, वे भी उमड़ पड़े और नगर निवासियों को उत्तेजित करने लगे।

संग्राम तब बड़े वेग से चबूतरे की ओर बढ़ने लगा। उसको बढ़ते देख, भीड़ चिल्ला उठी। "इन्दु देश की जय"—मातृ-भूमि की जय !

× × × ×

जय-घोषों से सारा आसमान थर्रा उठा। ऐसा दीखने लगा, मानो बिजली तड़प उठी हो।

इतनी बड़ी भीड़ चौक में इकट्ठी होती देख भला राजसत्ता

कैसे चुपचाप बैठी रहती ? फिर लोभो जैसे दूरदर्शी व्यक्ति जहाँ राजसत्ता के अगुआ हों, वहाँ की तो बात ही क्या है ?

राजमहल के चारों ओर सशस्त्र रक्षक नियुक्त कर दिये गये। एक घुड़सवार जो देखने से नायक सा जान पड़ता था, सवार लिये राजमहल की ओर आने वाली सड़क पर कावा काट रहा था। जिस समय वह एक छन के लिए किसी स्थान पर खड़ा होता भीड़, शान्त हो जाती। एक भयंकर निस्तब्धता छा उठती। दीख पड़ता, मानो लोग भय से पीले पड़ रहे हों। कोई भीड़ में से फिर पुकार उठता, देश की जाय।

इन्दु की बार-बार जय-घोष के होने से सवारों के घोड़े भड़क उठते। वे सवारों के कब्जे से छूट कर भागना चाहते। फलतः सवारों के लिए अपने घोड़ों को बस में रखना कठिन हो उठता।

'भीड़ उत्तेजित हो रही है।" एक रक्षक ने कहा।

ललाट पर चिन्ता और परेशानी लिए लोभो ने घंटी बजाई। एक सिपाही हाजिर हुआ।

"राजसभा के सदस्य आ गये ?" लोगों ने पूछा।

"हाँ, वे आपकी राह देख रहे हैं।"

लोभो वहाँ से बैठक में गया। उसे देखते ही लोगों ने उठ कर उनकी अभ्यर्थना की।

उसी समय राजमहल के पथ पर कावा काटने वाले सवारों के नायक ने सामने खड़े सिपाही से पूछा, "तुमने इत्तिला दे दी।"

"हाँ, इत्तिला दे दी।"

"उन्होंने क्या कहा ?"

"कुछ नहीं बोले। राजसभा में चले गये।"

"कुछ नहीं बोले।" दाँत पीसते हुए नायक ने कहा और

विशाल भीड़ की ओर घर कर देखा। तभी भीड़ एक बार फिर जयघोष कर उठी।

इस जयघोष से राजसभा के सभी सदस्य उद्वेलित हो उठे। नायक ने सैनिकों को अपना अस्त्र सँभालने का आदेश दिया।

सारा वातावरण जैसे आग सा उगलने लगा। भीड़ की उत्तेजना प्रति क्षण सावन-भादों की नदी की तरह बढ़ती जा रही थी।

तिलंगो और घुड़सवारों में जब कोई भी अपने अस्त्र सँभालने लगता, भीड़ बेकाबू हो एक कदम आगे बढ़ जाती। नायक ने सभी सवारों को कतार बाँध कर भीड़ रोकने का आदेश दिया। राजसभा का वातावरण बड़ा गम्भीर हो रहा था। सदस्य बड़ी उत्कंठा से लोगों की बातें सुन रहे थे। उक्त भाषण पर हाँ कहना ही राजसभा के सदस्यों का काम दीखता था। ज्योंहो लोभो महाशय का भाषण समाप्त हुआ, एक स्त्री राजसभा में दाखिल हुई।

प्रहरी उसे रोकता रहा पर वह भीतर पहुँच ही गयी। महाशय भाषण समाप्त कर एक ऊँची सी कुर्सी में, धँस कर बैठे थे। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। जो लोग उन्हें घेर कर बैठे थे उनके चेहरे और भी काले दीख रहे थे। ठीक इसी समय वह युवती तेजी से उनकी बगल में जा खड़ी हुई। किसी ने देखा और किसी ने देखा भी नहीं। राजसभा के सदस्य उसकी निर्भीकता देख दंग रह गये। लोगों के देखते-देखते युवती ने लोभो के हाथों में लिपटा हुआ एक काग़ज़ पकड़ा दिया।

हाथ में काग़ज़ लेते हुए लोभो ने द्वार पर खड़े प्रहरी की ओर घूर कर देखा तब तक अन्य प्रहरी उस युवती का पीछा करते हुए सभा द्वार तक आ पहुँचे।

युवती ने कड़क कर कहा "मैं अपना कार्य कर चुकी। यदि लोग चाहें तो मुझे पकड़ सकते हैं। जो कागज अभी-अभी मैंने दिया है उसमें इन्दु देश की जनता के दृढ़ निश्चय की सूचना एवम् उसकी माँग का उल्लेख है।"

तभी एक साथ स्वर गूँज उठा "पकड़ो इस औरत को? सभा के सब द्वारों को बन्द कर दो।"

इस आज्ञा का होना था कि सारा वातावरण विक्षुब्ध हो उठा। मानो एक बड़ा सा झंजावात आगया। उधर बात की बात में रूपकुमारी की गिरफ्तारी का सम्वाद भीड़ में पहुँच गया। किसी ने कहा, "लोभी ने स्वयम् उसके हाथों में बेड़ियाँ डालीं।' किसी ने बताया "परेशानन्द ने रूप को अपशब्द कहा। और उसका वस्त्र छिन्न-भिन्न कर दिया।" इस तरह की एक और अनेक उत्तेजनाजनक समाचार जिस समय भीड़ में फैल रहे थे, भीड़ बिल्कुल बेकाबू हो चली। विजय स्तम्भ के पास के चबूतरे को घेरने वाली, साल की मोटी-मोटी वल्लियाँ, भीड़ के वेग को संभालने में असमर्थ हो चूर-चूर हो गईं।

तभी चबूतरे को घेर कर खड़ी रहने वाली सेना का नायक आगे आकर बोला 'बहुत हो चुका। हमने भीड़ के साथ काफी भलमनसाहत का बरताव किया। अब यदि कोई भी—चाहे, वह महन्थ कृपाराम ही क्यों न हो—चबूतरे की ओर एक जौ भी बढ़ा तो हमें लाचार हो पथरकला का प्रयोग करना पड़ेगा।'

नायक की बातें समाप्त होते ही दूसरा व्यक्ति चबूतरे पर आया। शरीर से लम्बा, रंग गोरा, मुँह गोल, मूछें छोटी पर ऐंठी हुई, माथे पर जरी की पगिया, शरीर पर बनात का चोगा। उसे देखते ही भीड़ में छी! छी! की लहर दौड़ गयी। लोग

फुसफुसा कर आपस में कहने लगे "आखिर इस छिपे रुस्तम को भी सामने आना ही पड़ा।

आगन्तुक ने कहना आरम्भ किया। 'आप मुझे पराया न समझें। मैं आप का कल्याण चाहता हूँ। लोभो का संदेश है कि हुल्लड़ बाजों के चकमे में आप सब न आवें। अपने-अपने घर वापिस जायं। यहाँ कोई तमाशा न होगा। यदि आप मेरी बात न मानेंगे तो आप के लिए तैयार रखी हुई शतघ्नियाँ अपना कार्य आरम्भ करने में न चूकेंगी।"

आगन्तुक की बातें सुनते ही भीड़ में खलबली मच गयी। उस घबड़ाई भीड़ को देख एक कोने में खड़े दो व्यक्ति आपस में कहने लगे "यह है उत्साह इन्दु देश वालों का! यदि बारात वाली योजना न बनायी गई होती तो इतने लोग यहाँ तक आते भी नहीं।" कहने वाला व्यक्ति न जाने कब तक और क्या-क्या कहता रहा, पर सुनने वाला व्यक्ति उत्तोरत्तर गम्भीर होता जा रहा था। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकली सी जान पड़ी।

ठीक इसी समय चार सशस्त्र व्यक्तियों ने पीछे से पहुँच उन के कन्धे में मोटी-मोटी रस्यिाँ डाल उनकी मुश्कें कस लीं। उन दोनों का मुश्कों में कसा जाना था कि चबूतरे के रक्षकों के नायक ने चबूतरे पर खड़ा हो चिल्ला कर कहा, महन्थ कृपाराम और खड़गसेन गिरफ्तार कर लिये गये।"

इस सम्वाद को सुनते ही भीड़ एक क्षण के लिए निस्तब्ध रह गई। जान पड़ा, मानो सारा वातावरण आँधी आने के पूर्व की सी दशा को प्राप्त हो गया। दूसरे क्षण "महन्थ की जय", "इन्दु देश की जय", "मातृभूमि की जय", से सारा आकाश प्रकम्पित हो उठा! तभी भीड़ एक बार पुनः बड़े वेग से चबूतरे की ओर बढ़ी। उत्तेजित भीड़ का रुख देख, आगन्तुक जिसने

चेतावनी दी थी, इस तरह भगा कि उसकी परछाहीं भी न दीख पड़ी।

तभी एक नई अफवाह भीड़ में इस छोर से उस छोर तक यह फैल गई कि एक सहस्त्र सैनिकों को शीघ्र आने की आज्ञा भेज दी गई है।

इस सम्वाद पर भीड़ जिस तेजी के साथ चबूतरे की ओर बढ़ी थी उसी तेजी से पीछे हटने लगी।

भीड़ को पीछे हटते देख संग्राम ने चबूतरे पर पहुँच इन्दु देश की आजादी की घोषणा करने का विचार छोड़ दिया और भीड़ के भीतर घुस गया।

मुड़ती हुई भीड़ के भागने से कितने लोग भीड़ के नीचे पिस गये। कितनों के कपड़े फट गये और कितने कुचल उठे, इसका कोई हिसाब नहीं।

संग्राम ने आवेश में कहा—"पूछने का समय नहीं है। शीघ्रता करो। लोग अब अड्डे पर बैठे राह देख रहे होंगे।" ऐसा कहते-कहते वह भीड़ से अपने साथी को लिये न जाने कहाँ गायब हो गया। गलियों में छिपते, इधर-उधर लोगों की आँख बचाते, दोनों एक टूटे मकान के भीतर जा घुसे।

संग्राम को घबड़ाया देख दयालदास बोले—"क्या है संग्राम ?"

"महन्थ पकड़ लिये गये !" कहते हुए संग्राम व्यथित सा हुआ जमीन पर बैठ गया।

इस सम्वाद के सुनते ही उपस्थित लोगों में एक अजीब बेचैनी फैल गयी।

दयालदास ने अधीर होकर पूछा, "और लोग कहाँ हैं ?"

"वह देवी भी पकड़ ली गयी। उसने जिस वीरता का आज परिचय दिया, वह स्त्री जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। वह हम लोगों द्वारा तैयार किया गया माँग वाला कागज लिये सीधे राजसभा भवन में पहुँच गयी। कई सिपाहियों को मिल कर भी उसे रोकने का साहस न हुआ।" काश्यप ने कहा।

लोगों में जोश की एक लहर उमड़ पड़ी। संग्राम कहता रहा। "महन्थ के साथ खड्गसेन भी पकड़ लिये गये। एक हजार सिपाही बुलवाये गये हैं। भीड़ भाग रही है। ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे भीड़ एक बार फिर राजमहल की ओर मुड़ पड़े। बताइये दयाल दादा, यह कैसे होगा? महन्थ के बाद अब आप ही इस दल के संचालक हैं।"

दयालदास कुछ क्षण तक मौन रहे। फिर एकाएक आवेश में बोले, "घबड़ाने की कोई बात नहीं। वह पाजी रेवानन्द इस समय हमारे कब्जे में है। हमने उसका हाथ-पैर बाँधकर एक कोठरी में बन्द कर दिया है।"

"रेवानन्द आपके कब्जे में आ गया है?" संग्राम ने हर्षातिरेक में कहा और सब उसकी ओर आश्चर्य देखने लगे!

अध्याय ३

धर्मशाला पर मौनसों ने पहले ही अधिकार कर लिया था। जब उन्हें पता चला कि शक्ति-समाज के लोग राजधानी के भीतर ही अड्डा बना रहे हैं तो उनके भेदियों के कान खड़े हो गए और उस मुकाम की छानबीन करने लगे। इसके परिणाम स्वरूप शक्ति-समाज वालों का यह नया अड्डा भी मौनसों के अधिकार में आ गया। इस स्थान का पता देने में सब से बड़ा हाथ रेवानन्द का था। फलस्वरूप रेवानन्द को मौनसों की ओर से खूब सम्मानित किया गया था।

शक्ति समाज के लोगों के हाथ-पैर इस घटना के बाद ढीले पड़ गये। गुप्त स्थान का पता लग जाने का उन्हें उतना दुख न था जितना उन्हें उन कागजों के गुम हो जाने का था जिनमें उनकी योजना थी। उस योजना का शत्रु के हाथ में जाना शक्ति समाज के लिए मामूली बात नहीं थी। फिर भी संग्राम ने लोगों को साहस दिलाया और किसी तरह छिपते-छिपते वह कालीबाड़ी पहुँचा।

इन्दु के गरीबों के मुहल्ले में कच्ची मट्टी का बना हुआ एक छोटा सा देवालय था। उसी देवालय का नाम कालीबाड़ी है। यह स्थान जन-साधारण से उपेक्षित पर संग्राम का देखा हुआ था। काली बाड़ी में पहुँच कर, संग्राम ने छुटकारे की साँस ली। अपने साथियों को सम्बोधित करके बोला, "मेरा ख्याल है

हम यहाँ कुछ समय के लिए निरापद हैं। इतना ही नहीं, बल्कि यहाँ हमारी संख्या में थोड़ी सी वृद्धि भी होगी" ऐसा कहते हुए वह देवालय के अहाते के भीतर बनी कोठरी के द्वार पर गया और किवाड़ पर हल्का सा धक्का देते हुए बोला, पुजारी जी !"

"कौन ?"

"मै संग्राम !"

"आया", कहता हुआ एक युवक जिसकी अभी रेखें आ रहीं थीं, धीरे से बाहर निकला।

आगे संग्राम और पीछे वही पुजारी, साथ-साथ देवालय के भीतर आये। संग्राम ने पुजारी को दिखा कर कहा—'यह है हमारे दल का नया व्यक्ति। इनका नाम उपमन्यु है। इनके पूर्वज, कई पीढ़ो से काली-पूजक हैं और सच्चे अर्थ में शक्ति के पुजारी है।"

उपमन्यु ने सब को नमस्कार किया। फिर उसने यथा साधन सब के लिए भोजन का प्रबन्ध किया। भोजन के उपरान्त सब लोग काली की मूर्ति के सामने पलथी मार कर बैठ गये।

संग्राम ने कहना आरम्भ किया 'आप, महन्त, खड्ग और उस देवी के पकड़े जाने से दुखी दीख रहे है। आपको यह भी सोच कर दुख होता होगा कि इन्दु-देश में उनका साथ देने का कोई विशेष लक्षण नहीं दीखता। महन्त दल की भीड़ को भय और आकुलता के साथ भागते देख कर भी हतोत्साहित हो रहे होंगे, पर मेरा कहना है कि आप इनमें से एक भी बात से हिम्मत न हारें। इन्दु की खोयी हुई स्वतन्त्रता को वापिस लाने के लिए आपने जो व्रत लिया है उस पर अटल रहें। एक भी कदम पीछे न हटें। अब वास्तविक बलिदान के लिए तैयार हों। यह मेरा अन्तिम वक्तव्य है। अब भाषणों या वक्तव्यों का

समय नहीं रहा। स्वतन्त्रता नाम की वस्तु भाषण या वक्तव्य से प्राप्त भी नहीं हो सकती। उसके लिए हमें कार्य करना होगा। उस कार्य की पहली सीढ़ी का नाम है त्याग! हमें अपने परिवार, भाई बन्धु और धन-धाम के मोह को छोड़ कर, अपने जीवन को अत्यन्त तुच्छ समझ कर आगे बढ़ना होगा। हमें सूरदास के नीचे दिये गये पद को लक्ष्य रख कर काम करना होगा।

धनि जननी जो सुभटहिं जावै!
लोह गहे लालच कर जिय को औरौ सुभट लजावें।
मरें तो मंडल भेदि भानु को सुरपुर जाइ बसावें॥
जीवें तो सुख विलसें जग में कीरति लोकनि गावें।

"हम बारह व्यक्तियों के मर जाने से क्या होगा बेटा?" दयालदास बोले।

"दादा, बारह की संख्या तो बहुत है, यदि हममें से एक भी व्यक्ति बलिदान के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो तो यह दल प्रातः काल तक कम से कम अपने पीछे सौ व्यक्ति मरने के लिए तैयार कर लेगा, एक दधीचि की सूखी हड्डियों ने देवताओं की रक्षा की। पुराण की यह कथा भूल गये क्या दादा? देखना, कल मेरे साथ कितने व्यक्ति होते हैं। मैंने यह निश्चय किया है कि सब से पहले मैं आगे बढ़ूँगा। माँ की बेड़ियों को विमुक्त करने के लिए हाथ आया यह सुअवसर न खोऊँगा। क्या तब भी इन्दु देश के मृतक न जागेंगे?"

वृद्धावस्था से लटका हुआ दयालदास का 'चेहरा लाल हो आया। वे बोले, 'बेटा, पहले यह बुड्ढा मरेगा तब बच्चों की बारी आयेगी!'

दयालदास का इतना कहना था कि शेष व्यक्ति भी एक स्वर में बोल उठे, "हम सभी माँ के लिए मरने को प्रस्तुत है।"

"मैं आपको आपके निश्चय पर बधाई देता हूँ। आप चिन्ता न करें। आपको यह जान कर परम प्रसन्नता होगी कि जयश्री और कृष्णा ने अपनी सेना तैयार कर ली है। इस समय वे हमारे बीच नहीं है, पर जहाँ भी वे हैं, वे कार्य कर रही हैं। हमारे मरने का ढंग बिल्कुल नया और और अनूठा होगा। हम मुर्दों की तरह नहीं मरना चाहते, हम आगे बढ़ना चाहते हैं। हम भीड़ के नीचे दब कर, या भागते समय मौनसों की गोली खाकर नहीं मरना चाहते। हमें अपने मन से मोह त्याग देना होगा। शस्त्र-युद्ध में मारे जाने से कोई लाभ न होगा। हमें नये तरह से मरना होगा! हमें अपनी छाती ऊँची कर, बढ़ना होगा। सच्चा बलिदान करना होगा। बोलिये, आप में से कौन-कौन इस पूर्वीय कौम मौनसों को मार भगाने के लिए तैयार है?"

एक धीमी पर दृढ़ आवाज में सब एक साथ बोल उठे, "मैं हूँ।"

संग्राम की आकृति उत्फुल्लित हो उठी। इस भीषण प्रतिज्ञा के बाद जान पड़ा मानों वहाँ केवल बारह नहीं, वरन बारह सहस्र व्यक्ति बैठे हैं! हर एक के चेहरे पर दृढ़ता और वीरता नाच रही थी। उनकी आँखें चिरगारियाँ उगलती सी जान पड़ीं। उनमें आत्म-विश्वास की एक अनूठी लहर उत्पन्न हो गयी। कुछ क्षण पहले जो भय और आक्रान्तता उनमें दीख पड़ती थी, वह तिरोहित हो गयी। संग्राम बोला, "हमें जौहर करना होगा। हमें अपनी माताओं के दूध की आज लाज रखनी होगी। हमें मौनसों और उनके पिट्ठुओं को यह बता देना होगा कि हम भीरु, कायर और लोभ में पड़ किसी तरह जीते रहने की इच्छा रखने वाले प्राणी नहीं हैं।"

"तुम ठीक कहते हो बेटा, बिना बलिदान के कुछ न होगा।

हमें अपना बलिदान करना ही होगा; अन्यथा भावी इन्दु वासी हमें कायर समझेंगे।"

"इसमें क्या सन्देह है। रेवानन्द कहता फिरता था कि हमने ये सब आयोजन पैसा पैदा करने के लिए किया है।" मधुमत्त ने कहा।

"जिसके जो जी में आये कहे, हमें अपने ध्येय से नहीं गिरना चाहिए। रेवानन्द तो सचमुच ही बड़ा पतित व्यक्ति है। पर यह तो समय का फेर है। जिसके जो जी में आये, उसे कहने दीजिये। अच्छा अब मैं आपको नया कार्यक्रम बताऊँगा। उसी के अनुसार आपको कार्य करना होगा। पर इसके पहले मेरी इच्छा है कि हम लोग अपना वह प्रिय गाना गा लें जिसे हम शक्ति आश्रम में प्रति-दिन गाया करते थे। न जानें हम पुनः फिर एक जगह हो पायें या नहीं।"

संग्राम के कहने पर सब ने एक साथ गाना गाया। उसके उपरान्त संग्राम ने हर एक के हाथ में भावी कार्य-क्रम की एक-एक प्रति देते हुए कहा, "आपको अगले दिन इसी के अनुसार कार्य करना है। दिन समाप्त होने पर यदि मौका मिला तो हम यहीं इकट्ठा होंगे।"

और दूसरे दिन प्रातःकाल राजधानी की प्रमुख सड़कों पर तिलंगे दीख पड़ने लगे। सैनिकों की टुकड़ियाँ सड़क पर चलती दृष्टिगोचर हो रही थीं। इस अतिरिक्त प्रबन्ध का कारण यह बताया गया कि कल आधी रात सरदार रेवानन्द और शिव-नगर के इलाकेदार दोनों पकड़ लिये गये। उनका कहीं पता नहीं है।

इन्दु देश की निहत्थी और आरामतलब जनता महन्त, रूप और खड्ग की गिरफ्तारी से हतोत्साहित हो उठी थी। उसको

यह मालूम हो गया था कि भुलावे के लिए जो लोग आन्दोलन कर रहे हैं उनके पास वाक्शक्ति छोड़ कर और कोई शक्ति नहीं है, पर जब उन्होंने रेवानन्द और शङ्करवीर के उड़ाये जाने का सम्बाद सुना तो उनमें एक नयी लहर उमड़ पड़ी। बात की बात में यह सम्वाद न जाने किस साधन से सारी राजधानी में फैल गई और राजधानी ही क्यों, दोपहर तक इन्दु का कोई कोना शेष न रहा जहाँ यह खबर न फैली हो।

लगातार तीन दिनों तक मौनसों की ओर से भरसक इन दो सदस्यों का पता लगाने की कोशिश की गई पर वे कामयाब नहीं हुए। शक्ति समाज की ओर से सारे देश में एक चित्र बँटवाया गया जिसमें राजा नीचा सिर किये मामूली वेश में पत्थर की शिला पर बैठे थे और उनके सामने इन्दु की अधिष्ठात्री देवी हथकड़ियों और बेड़ियों में कसी थी।

एक ओर इस प्रचार दूसरी ओर दोनों सदस्यों के उड़ाये जाना दोनों का बड़ा असर हुआ। दूसरे सप्ताह इन्दु की जनता ने फिर राजधानी घेर लिया।

इसी बड़ी भीड़ का सामना करना आसान भी था और कठिन भी। मौनस भीड़ की शक्ति और कमजोरी दोनों समझते थे और उन्हीं की तरह संग्राम भी। पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार, पर्चा बाँटा गया। उसमें लिखा था, "आप चले जाँय। मौनस आपको देख कर विक्षुब्ध हैं। यदि आप न जाँयगे तो आप पर हमला होगा। अस्तु आप तुरन्त चले जाइये। हमें तमाशबीनों की आवश्यकता नहीं। जिन्हें जीवन का मोह न हो, जिन्हें अपनी माँ-बहन, स्त्री और बच्चों की याद न सताती हो, वे यहाँ रह सकते हैं। जिन्हें अपनी सम्पत्ति को लूटते देख

कोई राग-विराग न हो वे यहाँ रह सकते हैं। शेष लोग चले जायँ।"

इस सूचना पर सारी भीड़ हट गई, पर जितने लोग रह गये ऐसे जान पड़ते थे मानो वे जीवन का मोह छोड़ कर आये हों। फिर भी उनमें कोई अनुशासन नहीं था, न उनका कोई मुखिया था और न नेता। अब अपनी मरज़ी के अनुसार चल रहे थे। उनका ध्येय एक मात्र मौनसों की सम्पत्ति को हानि पहुँचाना था। इस तरह के लोग हर सड़क पर दिखाई दे रहे थे। उनकी सब से बड़ी भीड़ नगर के उस भाग में थी जहाँ धारा सभा के सदस्य थे।

दूसरे दिन लोभो का जन्मदिवस था। इस अवसर पर प्रथा के अनुसार अनेक उत्सवों का आयोजन हुआ था। जनता का अनुमान था कि मौनस समझौता कर लेंगे। उनका कहना था कि वे इतनी अधिक संख्या में हैं कि मौनस उन सब को यदि सज़ा भी देना चाहें तो भी न दे सकेंगे। उनका अनुमान था कि वे कम से कम पाँच लाख हैं। फिर यह कब सम्भव है कि पाँच लाख व्यक्तियों को कारागार में भेजा जा सके? इस समय जनता में बिना किसी के नेतृत्व के आगे बढ़ने का भाव प्रकट हो गया था।

पूर्व योजना के अनुसार संग्राम ने वास्तविक कार्यकर्ताओं और तमाशबीनों को अलग-अलग छाँट दिया। जिन्हें केवल तमाशा देखना अभीष्ट था उन्हें घर के भीतर रहने के लिए आग्रह किया और जो अपने जीवन का मोह छोड़ सकें उन्हें आगे बढ़ने को कहा गया।

कर्मचारी जन्म दिवस उत्सव को सार्वजनिक रूप देना चाहते थे। इसलिए बलपूर्वक एवम् धमकी दे कर लोगों को अपने घरों

को सजाने का आदेश दे रहे थे। इस आज्ञा ने स्वतन्त्रया प्रेमियों के लिए वरदान का काम किया। जनता और भी विक्षुब्ध हो उठी। जगह-जगह सैनिकों और तिलंगों से मुठभेड़ के समाचार आये। इस समय काली के मन्दिर का ऊबड़-खाबड़ विस्तृत मैदान नवयुवकों, बालकों और प्रौढ़ों से भर उठा। सभी के चेहरे पर आवेश और क्रोध के भाव थे। संग्राम ने सब को सम्बोधित करके कहा, "हमें किसी से घृणा नहीं है। हम किसी का अधिकार नहीं छीनना चाहते। हम किसी को दुखी नहीं करना चाहते। हम किसी पर शस्त्र से हमला नहीं करना चाहते हम मानव मात्र की स्वतन्त्रता चाहते हैं, हम यह नहीं चाहते कि दुनिया की कोई कौम खूँरेजी और पशुबल के सहारे किसी देश या जाति को गुलाम बनाये रखे। हमारा ध्येय है अपनी खोयी हुई स्वतन्त्रता प्राप्त करना और वह भी उन्हीं उपायों से जिन्हें सभ्य संसार उचित ठहराये। हम इन्दु देश को अपने प्राण से भी बढ़ कर प्यार करते हैं, इसलिए जहाँ अपने प्यारे देश का प्रश्न उपस्थित है हम प्राण का मोह त्याग देने को तैयार हैं। यदि आप सब एक उचित नियन्त्रण के भीतर रह कर हमारे ध्येय के साथ सहयोग करने को तैयार हों तो ठीक है, वरन आप घर की राह देखें। हम अराजकता के कट्टर विरोधी हैं। हमें भीड़ का अनियन्त्रित स्वरूप पसन्द नहीं है। हम चुने हुए लोगों को लेकर राष्ट्र-यज्ञ के लिए होता बनना चाहते हैं। बोलिए आप में से किस किसको मेरी योजना पसन्द है।

"हम सभी तैयार हैं" के स्वर से सारा वायु मण्डल गूँज उठा। तभी लोगों ने देखा काली मन्दिर की ओर एक बहुत बड़ी सेना आ रही है। एकाएक धाँय धाँय हो उठा।

अध्याय ४

'तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो। मुझे इन्दु की सीमा के भीतर ही रखो।' रेवानन्द ने कहा।

'तुम्हारे जैसे व्यक्ति के भार से इन्दु की कातर भूमि व्यथित हो रही है। अब तुम कभी भी इन्दु वापिस नहीं लौट सकते।"

"ऐसा न कहो। मुझे मुक्त कर दो, मैं अपने पापों का प्रायश्चित करूँगा। मैं भी इन्दु का बासी हूँ मेरे शरीर में भी इन्दु का रक्त है!"

दल के नायक दाँत पीसते हुए बोले, कितने पापों का प्रायश्चित करोगे सरदार साहब! एक दो पाप हों तो उसका कोई हिसाब किताब भी करे। तुम रंगे स्यार हो। जीवन भर लोगों को धोखा देते रहे हो। जवानी के आरम्भ में तुमने गढ़ी के ठाकुर दिग्विजयसिंह की पत्नी को व्यभिचारिणी बनाया। तुम्हें उतने से सन्तोष नहीं हुआ बल्कि तुमने ठाकुर की हत्या करने के लिए अपना गुंडा भेजा, वह तो कहो, ठाकुर सावधान थे, उन्होंने तुम्हारे गुंडे का ही काम तमाम कर दिया ...

रेवानन्द चीख कर बोला, 'तो क्या ठाकुर अभी जिन्दा है! उस दिन ठाकुर मरे नहीं!'

नायक सुखी हँसी के साथ बोला, 'जिन्दा है! अच्छी तरह जिन्दा है, भगवान ने इन्दु की लाज बचाने के लिए उन्हें

जिन्दा रखना ही उचित समझा। महन्थ कृपाराम ही ठाकुर दिग्विजयसिंह हैं !"

"महन्थ !" सरदार दुबारा चीख पड़े।

"हाँ महन्थ जिन्हें तुम्हने मुश्कें बँधवा कर गिरफ्तार कराया था !"

सरदार के चेहरे पर थोड़ी सी ताजगी आगई। नायक फिर बोला, 'तुम सोचते होंगे, महन्थ अभी जेल में होंगे और इस तरह तुम्हारे पापों का भंडा फोड़ न हो सकेगा। मक्कार, पतित! कह कर नायक ने एक साथी को संकेत किया! और उसके आध घंटे के भीतर कई लोग आ पहुँचे। नायक संकेत करते हुए बोला, 'उधर देखो श्वेत दाढ़ी वाले महापुरुष को ये वही व्यक्ति हैं जिनके साथ तुमने विश्वासघात किया है !'

सरदार ने देखा, ठाकुर दिग्विजयसिंह उसके सामने खड़े हैं, तब वह लड़खड़ाने लगा। उसे लड़खड़ाते देख, नायक ने अपने जूतों की ठोकर दे उसे जमीन पर गिरा दिया! तभी ठाकुर बोले, रहने दो दयालदास, पापी को क्षमा करने में जो महत्व है, वह उसे सजा देने से नहीं।"

यही मैं भी कभी समझता था, पर क्षमा का कुछ लोग बड़ा कुअर्थ लगा लेते हैं। इस इन्दु द्रोही की करतूते देखते हुए इसे क्षमा करने का जी नहीं होता, इस व्यक्ति का निजी और सार्वजनिक दोनों जीवन, इतना कलुषित रहा है कि इसे सलाखों से जला जला कर मारा जाय तो भी अपराध न होगा। ऊपर से देशभक्त बनने वाला यह नीच इतना बडा देशद्रोही रहा है कि इसने हमारी स्वतन्त्रता खतरे में डाल दी। वह तो कहो, आप जैसे दूरदर्शी व्यक्ति इस वक्त यहाँ मौजूद थे, अन्यथा पड़ोसी देशों की तरह इन्दु भी सदा के लिए गुलाम बन जाता।"

"तो तुम दयालदास हो। रेवानन्द ने धीरे से कहा और अपने आप बड़बड़ाने लगा, सचमुच मै बहुत बड़ा पापी हूँ!" मैंने बड़े बड़े पाप किए मेरी वजह से आप लोगों को इतना कष्ट उठाना पड़ा!"

अब तो यह सब कहोगे ही, मक्कार, उस दिन तुम्हारी प्रायश्चित्तों को यह भावना कहाँ चली गई थी जब दयालदास को अनायास दस वर्ष की सजा होगई! ठाकुर दिग्विजयसिंह का इलाका जप्त होगया उनकी पत्नी और पुत्र गायब कर लिए गए! बोलो, ठाकुर की पत्नी और उनका नन्हा पुत्र कहाँ हैं तुम्हने कहाँ छिपा रखा है।"

"मैंने.. मैंने नहीं छिपाया है! मैंने उनके साथ कुछ नहीं किया! तुम मुझे नाहक अपराधी समझते हो। ठाकुर की कथित मृत्यु के बाद उसे उसे बच्चे सहित गायब करने का श्रेय महाराज को है। उन्होंने, इलाके को हड़पने के विचार से वैसा किया। आप जानते हैं गढ़ी इन्दु का सब से बड़ा ताल्लुका है! इतने बड़े ताल्लुके को हथियाने के विचार से ही यह सब खड़यन्त्र रचा गया था। ठाकुर की पत्नी को महाराज ने वर्षों तक अपने गुप्त महल में रखा था! उसके बाद उसका क्या हुआ मैं नहीं जानता!"

"नहीं जानते ....." कहते हुए दयालदास ने उन्हें कस कर कई कोड़े लगाये। बोले ये सब फरेब की बातें हैं। सच बोलो। यह न समझो कि हमें सत्य का पता नहीं लगेगा! हमारी शक्ति का अन्दाज तुम इसी से लगा सकते हो कि हमने मौनसों की विशाल सेना के बीच से तुम्हें गिरफ्तार कर लिया, महन्थ और खड़गसेन को उनके कड़े पहरे से छुड़ा ले आये। हम मुट्ठी भर

हैं तो क्या, पर हमें अपने जीवन का कोई मोह नहीं है, हम तुम्हारे जैसे दुष्टों को पूरा दंड दिये बिना न मानेंगे।"

"उसका पता पूछ कर क्या करोगे दयालदास! उसी ने यह सब अनर्थ रचा है। अब उस पापिनी को लेकर हम क्या करेंगे।" महन्थ बोले।

आप ऐसा न कहें ठाकुर, अभी आपने इस महापापी को क्षमा करने का मुझे आदेश दिया था, क्या यह बात आप भूल गए! बिचारी मानकुमारी का अपराध था क्या! वह गद्दी के भावी स्वामी की जननी है! उसे गुमराह करने वालों को सजा मिलनी चाहिये न कि उस विचारी को!"

"यह बात तुम कह रहे हो दयालदास! मुझे आश्चर्य है! उसी की गवाही पर तुम्हें दस वर्ष का कारावास दिया गया था! अगर मैं भूलता नहीं तो उसने कहा था कि तुम्हारा उससे अनुचित सम्बन्ध है।"

हाँ कहा था, पर किस परिस्थिति में कहा था—स्वेच्छा से कहा था अथवा बलपूर्वक उससे कहलवाया गया था, यह सब जब तक ठीक ठीक तरह से मालूम न हो जाय, तब तक हम ठकुराइन को अपराधी कैसे मान सकते हैं! बिचारी! इस वक्त न जाने कहाँ होगी और वह बालक...भगवान काश उसे जीवित रखे होता।"

ठाकुर गंभीर हो सुन रहे थे। बड़ी देर बाद बोले, 'अब तो जो कुछ होना था हो चुका, अब अपना आगे का कार्यक्रम बताओ!"

आगे का कार्य क्रम चल रहा है ठाकुर है। उस वीर महिला को अब हमें छुड़ाना है जिसने मौनसों की भरी सभा में

हमारा अधिकार पत्र पहुँचाने का साहस किया। उसकी हिम्मत देख कर मौनसों और उनके समर्थकों को दाँत खट्टे हो गए।"

"तुम सच कह रहे हो! मैं भी उस वीर महिला का दर्शन करना चाहता हूँ। ऐसी ही वीरांगनायें देश का नाम उज्ज्वल करती हैं ठाकुर बोले! फिर पूछ उठे 'वह कौन है! पहले तो हमारे दल में नहीं थी।"

'हाँ बिल्कुल नहीं थी, वह तो आखिरी घड़ी पर आई। रूपकुमारी के हाथों वह कागज भेजा जा रहा था, कि वह बीच में आ गई। बोली, यह काम मैं करूँगी। जनता तो अभी तक यही समझे बैठी है कि यह कार्य रूप कुमारी ने ही किया है! और वही गिरफ्तार हुई है।"

"वह इस वक्त कहाँ रखी गई है!"

"सुना है उसे नगर कोट के धर्मशाले में रखा गया है। शायद आप को मालूम न होगा कि नगर कोट के धर्मशाले को मौनसों ने जेल का रूप दे दिया है।"

ठाकुर की मुद्रा और भी गम्भीर हो उठी! ठीक उसी समय एक आदमी हाँफता हुआ। आ पहुँचा। उसे देखते ही दयालदास ने पूछा, 'क्या है काश्यप!"

काश्यप को बड़ी देर तक बोली नहीं निकली—जब बोली खुली तो वह लड़खड़ाती जबान में बोला, 'हमारे दल के अधिकाँश लोग गिरफ्तार कर लिए गए। संग्राम, केशर, मधुमत्त, मधूलिका! आदि..."

तो इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं है। जब हमने महन्थ को किले की ऊँची दीवार में सुराख कर निकाल लिया, तब नगर-कोट की धर्मशाला से उन्हें निकाल ले आना कोई बड़ी बात नहीं। तुम लोग तैयारी करो।"

'इसे क्या करोगे।" रेवानन्द की ओर संकेत करते हुए ठाकुर ने पूछा !

इसे देश निकाला की सजा दी जायगी। उसकी दाढ़ी मूछ बनवा कर इन्दु की सीमा से बडी दूर भेज देना है। ताकि यह अभागा इन्दु इन्दु रटता मर जाये। ऐसा कह कर दयालदास अपने पास खड़े दो व्यक्तियों से बोले 'इसके शरीर के सब कपड़े उतार लो ! इन्दु का एक तिनका भी इसके शरीर पर न रहना चाहिए ! इसे बिन्दु देश की राजधानी में ले जाओ—वहाँ के सेना नायक से कहना कि दयालदास ने इसे देश निकाले की सजा दी है यह जहाँ रखा जाय वहाँ से दो मील के भीतर कोई पवित्र 'इन्दु' का नाम तक न ले।'

"इससे क्या होगा। यह तो बिल्कुल अनूठी सजा रहेगी !"

"अवश्य ही यह अनूठी सजा होगी इसका ज्यादा अनूठापन, तो बाद ही में सुनने को मिलेगा।"

और उसी रात को दो आदमियों की हिरासत में, रेवानन्द अपना काला सा मुँह लिए इन्दु के बाहर निकाल दिया गया ! दयालदास अपनी टुकडी के साथ बड़े वेग से नगरकोट की ओर बढ़े चले जा रहे थे। चलते चलते आधी रात बीत गई। ठाकुर बोले, 'दयालदास ! मनुष्य जीवन, क्या उलझनों और कष्टों के ही बीच पूरा होता है। तुमने दस वर्ष का कारागार भोगा ! पत्नी का वियोग सहा। एक पुत्री जयश्री रही, वह भी आज जेल में डाल दी गई।"

दयालदास मुस्करा कर बोले वीर ठाकुर, मैं तो तुम्हारे दुखों को ही देख कर जी रहा हूँ। मेरा क्या ! मैं तो एक साधारण व्यक्ति था, और हूँ, पर तुम तो बिना तिलक के राजा था। राज पाट गया, स्त्री गई, इज्जत लूटी गई, पुत्र गया ! पिछले पन्द्रह वर्ष

में शायद ही एक रात भी कहीं चैन से काट सके हो—कुत्ते सदा पीछा करते रहे हैं! उनसे छिपते रहना, छिप छिप कर, देश के लिए इतना बड़ा कार्य कर डालना!—ऐसी विकट परिस्थितियों में इतना दृढ़ साहस रखने वाले सेनापति के सिपाही को अपने दुखों की चिन्ता करने का मौका कहाँ मिल सकता है!"

बात करते करते एकाएक दयालदास चौंक कर बोले, 'बड़ा तेज प्रकाश हो रहा है, ठाकुर जरा उधर देखो, कहाँ से रोशनी आ रही है, और तब सब लोग एकाएक ठिठक कर खड़े हो गए! प्रकाश धीरे धीरे तीव्रतर होता जा रहा था।"

"किस चीज़ का प्रकाश है दद्दा" एक ने पूछा!

ठाकुर बोले "लगता है, कहीं जोरों की आग लग गई है।"

ओह...कह कर सब लोग आगे बढ़े। कुछ दूर और आगे बढ़ने पर दयालदास चीख कर बोले, 'नगर कोट की धर्मशाला जल रही है! ठाकुर! मालूम होता है मौनसों ने धर्मशाले में आग लगा दी है।' ऐसा कहते हुए वह गिर पड़े!

अध्याय ५

एक वृक्ष के नीचे मामूली जाजिम बिछी थी। एक विशिष्ट व्यक्ति को घेर कर सात आठ आदमी बैठे थे। बीच में बैठे व्यक्ति के चेहरे से गम्भीर चिन्ता की भावना व्यक्त हो रही थी। सब को सम्बोधित कर वे बोले, 'मेरे जैसे अपराधी के लिए भी हमारा जनता इतना कष्ट उठाने को तैयार होगी इसका यदि मुझे ज्ञान होता तो मैं कभी भी कायर की तरह इन्दु छोड़ कर बाहर न आता। अब वापिस जाऊँ तो कैसे—जब यह सुनता हूँ कि हमारे ही रखे हुए आदमी हमारी निहत्थी जनता पर अस्त्र चलाते हैं तो मन विक्षुब्ध हो उठता है।'

जनता के साथ होने वाले व्यवहार की तो कुछ पूछिये मत, जनता को पशु समझ कर आज्ञा दिया जाता है। देश का धन धान्य अब विदेशियों के हाथ में है। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि इन्दु देश की धारा सभा के ही व्यक्ति जो कभी आपसे जनता के हक के लिए लड़ा करते थे, इन्दु के जनता के अधिकारों को बेतरह कुचल रहे हैं! लेकिन .....

"लेकिन क्या!"

"जनता भी पूर्ण जागरुक हो उठी है। महन्थ कृपाराम के नेतृत्व में बहुत बड़ा काम हो रहा है।"

"महन्थ कृपाराम!...कहते हुए, उस व्यक्ति ने ज़ोर की साँस

ली। कुछ देर तक चुप रह कर वे बोले। महन्थ कृपाराम के कार्यों की बदला भला क्या मैं कभी चुका सकूँगा।"

उनकी इस उक्ति पर उपस्थित लोग आपस में एक दूसरे का मुँह देखने लगे। वे फिर बोले, 'पर इन तमाम अनर्थों की जड़ है रेवानन्द! काश मैंने रेवानन्द पर इतना विश्वास न किया होता। रेवानन्द इन्दु का जयचन्द होकर पैदा हुआ।

"उसे उसके कर्मों की सजा भी मिल गई!" एक बोला।

"सो कैसे!"

मैं आपका पत्र लेकर विन्दु गया था। विन्दु का सेना नायक दयालदास का बड़ा मित्र है। रेवानन्द को पकड़ कर शक्ति-समाज ने विन्दु भिजवा दिया था। विन्दु में वह एक अत्यन्त निर्जन स्थान में कैद किया गया था। मरने के वक्त जैसे पागल कुत्ते भूँक भूँक कर मरते हैं, वह वह वैसे ही इन्दु इन्दु रट कर मरा! जिस कमरे में वह मरा पाया गया, उस कमरे के दीवाल पर नाखून से इन्दु के अनेक मान चित्र उरेहे गए थे! जहाँ वह पड़ा था, वहाँ जमीन पर भी इन्दु का पूरा मानचित्र खिंचा था। उस मानचित्र पर सिर टेके वह मरा! पहरेदारों का कहना था कि उसने अन्न जल सभी त्याग दिया था। कहता था कि मैं देश द्रोह का प्रायश्चित करूँगा मैंने अपने देश की आजादी बेंची है, मेरे लिये कोई दंड भारी नहीं है!"

"एक तरह से मैं भी इन्दु के विछोह में वैसी ही पीड़ा भोग रहा हूँ। न जाने कब मुझे मातृभूमि के दर्शन होंगे।—कहते कहते उस व्यक्ति की आँखों में आँसू आगये। सभी उपस्थित व्यक्ति के नेत्र आर्द्र हो उठे। लगा जैसे करुणा ने वहाँ अपना आधिपत्य कर लिया हो।' इतने में, कुछ कोलाहल सुन पड़ा। लोग उठ उठ कर सामने, आगे, पीछे झाँकने लगे। धीरे धीरे,

कोलाहल पास आने लगा। थोड़ी देर में सारा स्थान कोलाहल पूर्ण हो उठा। "इन्दु की जय, मातृभूमि की जय" की जय जयकार स्पष्ट सुन पड़ी !

'यह तो इन्दु की जय जयकार हो रही है—आओ आगे बढ़ कर देखें' कह कर वह व्यक्ति उठ पड़ा और उसके पीछे और लोग भी चल पड़े।

कुछ ही कदम गए होंगे कि आने वालों का सामना होगया। भीड़ जय जयकार बोल उठी, 'जननायक की जय।" और उसके बाद ही संग्राम इन्दु देश की विजय ध्वजा को उस व्यक्ति के हाथों में देकर बोला, 'महाराज, अब इसे सँभालें !' '

महाराज के नेत्र झर झर चू चले ! सब की सब भीड़ जहाँ की तहाँ बैठ गई और उन्हीं के बीच जमीन पर महाराज भी बैठ गए !

संग्राम उठ कर कहने लगा, 'हम इन्दु देश की खोयी स्वतन्त्रता को किस तरह प्राप्त कर सके हैं, यह इतिहास की एक घटना है। यह घटना, उन तमाम पददलित देशों में दुहरायी जा सकती है जो पादाक्रान्त हो मुर्दों सा जीवन बिता रहे हैं। अपनी खोई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में हमें अपने अनेक साथियों से सदा के लिए बिछुड़ जाना पड़ा है। मौनसों ने नगर कोट की धर्मशाले में आग लगा कर जो लंकादहन रचा, उसमें हमारे हज़ारों साथी जल मरे। महन्थ कृपाराम जिनकी बुद्धि और चतुराई से, हमने सफलता पाई, आग की लपटों से लड़ते लड़ते स्वर्गवासी होगए ! वह महिला जिसने हमारी घोषणा राजसभा तक पहुँचाई थी, आग में तिल तिल कर जल गई।"

"इस तरह बलिदान होने वाले महन्थ और वह महिला, गढ़ी के ठाकुर दिग्विजयसिंह और उनकी धर्मपत्नी" मानकुमारी थीं !"

दयालदास ने उठ कर कहा, 'फिर अन्त में संग्राम के मस्तक पर हाथ रख कर बोले, और यह युवक शिरोमणि संग्राम उन्हीं का पुत्र है !"

"गढ़ी के ठाकुर का पुत्र संग्राम !" और उसका इतना त्याग !" कहते कहते जननायक उठ पड़े। उनका गला रुँध उठा। उन्होंने संग्राम को गले से लगा लिया। बड़ी देर बाद जब उनका गला खुला—वे बोले, अब मैं इन्दु देश का शासक होकर नहीं लौटना चाहता। इन्दु देश का शासन अब प्रजा सभा करेगी और उस प्रजा-सभा का प्रथम नायक होगा संग्राम हम इन्दु के उन त्यागी वीरों विशेष कर महिलाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं जिनके बलिदान के बल पर इन्दु की खोई सौभाग्य लक्ष्मी फिर वापस मिली।" कहते हुए जननायक खड़े हो गए। उपस्थित जनता ने भी खड़े हो अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

गढ़ी की पुरानी हवेली के बगल में नई हवेली की ऊँची इमारत चाँदनी में नहा रहा थी। उसके वार्जे पर खड़ी दो छाया मूर्तियाँ धीरे धीरे प्रकट हो उठीं। एकाएक एक मूर्ति हिली। "बेटा मेरे जीवन का कार्य पूरा हुआ। अब मैं वानप्रस्थ को जाऊँगा। यह आखिरी बोझ भी तुम्ही सँभालो।"

आँखों में आँसू भर कर संग्राम बोला, "आपने शैशव से मुझे पाला। पिता को अन्त समय तक भी न जान पाया। और अब आप भी जा रहे हैं।"

एक न एक दिन मुझे जाना ही है बेटा। मुझे कब तक बाँध रखोगे। पर...

"पर क्या ?"

"यह जयश्री..."

और तभी जयश्री वहाँ आ पड़ी। संग्राम जयश्री का हाथ पकड़ दयालदास के चरणों में झुक पड़ा। दयालदास की आँखें सिक्त हो आईं। तभी पुरानी हवेली में जोरों की रोशनी हो उठी। उस दिव्य ज्योतिको देखते ही तीनों व्यक्ति पृथ्वी पर झुक पड़े।

जायसवाल प्रेस, कीटगंज. प्रयाग।